वन्देमातरम् ।

भारतनररत्नचरितावली ।

अर्थात्

भारतवर्ष के बारह प्रातःस्मरणीय नररत्नों के सचित्र जीवन चरित्र

लेखक और प्रकाशक

पण्डित रामचन्द्र वैद्यशास्त्री

(अलीगढ़ निवासी)

इसका तर्जुमा गुजराती, मराठी, बंगला, और उर्दू में भी छपरहा है ।

विक्रमाब्द१९६९

बाबूकिशनलाल के "बम्बईभूषण प्रेस" मथुरा में मुद्रित

प्रथमवार १००० प्रति

मूल्य प्रति पुस्तक १)

॥ समर्पण ॥

भारतवर्ष के प्रसिद्ध देशहितैषी

राष्ट्रीय पक्षके आराध्य अगुआ

भारतवर्ष के लिये सच्चे मनसे 'स्वराज्य' की इच्छा रखने वाले, अपनी विद्वत्ता, कार्यदक्षता, स्वार्थत्याग, देशोपकार, और सदाचारसे कोटि कोटि मनुष्यों को मुग्ध करने वाले, अपने जीवन, लेख और व्याख्यानों द्वारा देशके लाखों मनुष्यों के अज्ञान को नष्ट कर कर्तव्यनिष्ठ बनानेवाले।

राजनैतिकगुरु प्रातःस्मरणीय भारतभास्कर स्वदेशाभिमानी !

॥ लोकमान्य श्रीबालगंगाधर तिलक ॥

के चरणकमलों में

यह पुस्तक

भक्तिपूर्वक सादर समर्पित है।

॥ ओ३म् ॥

प्रस्तावना

विश्वेशो वः स पायात् त्रिगुणसचिवतां योऽवलम्ब्यानुवारं ।
विश्वद्रीचीनसृष्टि स्थिति बिलय मजः स्वेच्छया निर्मिमीते ॥
यस्येयत्तामतीत्यप्रभवति महिमा कोऽपि लोकव्यतीत-
स्त्यक्तो यश्चश्रुराद्यैरपि निपुणतमैर्वीक्षणादि क्रियासु ॥१॥

संसारमें मनुष्यको शिक्षित बनने का सबसे बड़ा और उत्तम साधनहै तो वो अपने प्राचीन वा अर्वाचीन आदर्श पुरुषों का चरित्रज्ञानही है। ऐसा कौन हतबुद्धि होगा जिसे अपने पूर्वजों की कीर्ति उनकी बिद्या, बुद्धि, पुरुषार्थ, दुःख सुख, राजनीति, तथा आचार व्यवहार की कथाएँ रुचिकर न होती हों ॥

चरित्र और इतिहास में कुछ अधिक भेद नहींहै। किसी जाति, देश वा राष्ट्रको उन्नतावस्था में लानेवाले महज्जनों के चरित्र और कार्योंका विस्तृत वर्णन ही इतिहास नामसे पुकाराजाता है ॥

इसमें कुछभी सन्देह नहीं कि भूतकाल में बिदेशी यवनों के घोर आक्रमण और अत्याचार से भारत का इतिहास ही क्यों और भी अनेक उत्तम २ शास्त्र नष्ट होचुके हैं। तथापि हिन्दुओं की बुद्धिमत्ता से भारतवर्षका वहुत कुछ इतिहास बचाहुआहै। जिन परोपकारी दूरदर्शी ब्राह्मणों ने पर्वतोंकी दुर्गम भयंकर गुफाओं में छिप २ कर वर्षोंतक वेदों को कण्ठस्थित रक्खाथा, और फिर सुराज्य पाते ही लिपिवद्धकर वेद रक्षाकी थी। उन्ही की सुसन्तानों ने अनेक रूपों में हमारे इतिहास को भी जीवित रक्खाहै। भारतबासियो! खूब सोच

लो जबसे तुम लोगोंने महाभारत, वाल्मीकि रामायण आदि पूज्य ग्रन्थों में वर्णन किये हुए महज्जनों के चरित्रों से शिक्षा लेने का अभ्यास छोड दिया है । तभीसे तुमलोगों को चारों ओर से बिपत्तियोंने घेरा है । हाय ! हाय !! कहां तो तुमलोगोंके पुरखा प्रतिदिन कमसेकम प्रातः और सायं दोबार नियम से अपने पूर्व पुरुषों की कीर्ति को श्रवण कर अपनी आत्मा को पवित्र करते थे । आज उन्हीं की सन्तान महीने में एकदिन भी अपने पुरखों का पदानुसरण नहीं करती । यादरक्खो ! तुमारी उन्नति तुमारे धर्मपर अवलम्बितहै । धर्मसे क्या नहीं होता।

धर्म्मेण हन्यते व्याधि धर्मेण हन्यते ग्रहाः ।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः ॥

जबतक धर्मपर आरूढ न होओगे धर्मजन्य ज्ञानाम्बु से अपने मुख को न धोओगे तवतक क्या तुमारा ये अज्ञान, ये आलस्य, और उदासी नष्ट होगी? इसी लिये कहते हैं यदि शिक्षित बनना चाहते हो, अपनी उन्नति किया चाहते हो, पृथ्वी के अन्यान्य देशोंके समान सभ्य कहलाना चाहते हो तो धर्म का अनुष्ठान करो । देखो ! तुह्मारा शास्त्र पुकार कर क्या कह रहाहै ॥

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किंनु मे पशुभिस्तुल्यं किंनु सत्पुरुषैरिति ॥

अर्थात् मनुष्य को उचितहै कि वो प्रतिदिन अपने चरित्रको देखे और विचारे कि मेरे कार्य मेरा चरित्र पशुओं का साहै अथवा सत्पुरुषों का सा । यह निर्विबाद सिद्धहै कि मनुष्य के चरित्र के सम्हलने केसाथ २ धर्मानुसरण भी होताही रहताहै हमारी कृपालु गवर्मेन्ट के राज्यमें किसी के धर्मपर किसी प्रकार

से व्याघात नहीं पहुंचायाजाता, फिर ऐसे समय में भी यदि धर्मसेवा न करो तो तुमारी इच्छा ॥

प्रिय पाठक ! अब इस बात के दिखलाने की तो कुछ आवश्यक्ता न रही होगी कि अपने पूर्व पुरुषों और मान्य पुरुषों का चरित्रज्ञान ही सर्वोत्तम धर्मसाधन है । क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य अपने पिता, पितामह, प्रपितामह, आदि के चरित्रों को श्रवण कर उनका पदानुसरण करता है । उसी प्रकार प्रत्येक जाति, देश, वा राष्ट्र, विद्वान्, बीरों तथा स्वदेशनायकों के चरित्र पढकर अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करता है । चरित्रों को मनन करनेवाले मनुष्य को भली प्रकार ज्ञात हो जाता है उसके देश के नायकों ने कैसे कैसे काम किये और उनके अनुष्ठान में उन्हें किन२ विघ्नवाधाओं से सामना करना पड़ा तथा उन्हें झेलने के लिये उन पुरुषपुङ्गवों ने कौन २ से उपायों का अवलम्बन किया और अन्त में वे कहां तक कृतकार्य हुए । बस इसी प्रकार महज्जनों के चित्र, स्मारक मन्दिर, और उत्सवों के द्वारा भी मनुष्य अनेक उत्तमोत्तम शिक्षा प्राप्त कर सक्ता है । खेद का स्थान है कि इन बातों के महत्व को जाननेवाले बहुत कम हैं । पाश्चात्य शिक्षा के विषैले संस्कारसे इन विषयों में लोगों की श्रद्धा बुद्धि और तात्विक दृष्टि से इन के महत्व को देखने की शक्ति एक दम नष्ट होगई है इसी लिये फिर कहना पड़ता है कि भारत वासियो ! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो इधर उधर न भटक कर अति शीघ्र अपने धर्म पर आरूढ़ होओ।

बान्धवो ! में जब कभी सांसारिक झगड़ों से पृथक् हो एकान्त में बैठता था तो सहसा मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हो

आता था कि हिन्दी भाषा में एक ऐसी पुस्तक की बडी आवश्यकत्ता है जिसमें हमारे आसन्न भूतकाल के तथा वर्तमान काल के महज्जनों के चरित्र हों। परन्तु मैं जब उक्त आवश्यक्ता की पूर्ति की ओर ध्यान देता था तो मनहीं मन कहताथा कि ये कार्य तो किसी विद्वान् पत्र सम्पादक अथवा हिन्दी के सुलेखक के करने का है। तू इस की अधिक चिन्ता क्यों करता है ये शीघ्र ही अवश्य पूरा होगा।

इस प्रकार सोचते २ जब बहुत समय व्यतीत होगया तो एक दिन मेरे मनमें संकल्प उदय हुआ कि तूही यथाशक्ति इस काम को पूरा कर। यदि विद्वान्लोग तेरी टूटी फूटी पुस्तक प्रणयन पद्धति से प्रसन्न न होंगे तो तेरे उद्देश्य को भला बताकर तो अवश्य ही तुझे हृदय से लगावें गे। हिन्दी भाषा में पुस्तक लिखकर भारतबासियों की सेवा करनेका यह तेरा प्रथम मंगलाचरण है। यदि इसमें तुझसे कुछ अनुचित भूल हो जायगी तो उसे भी विद्वान् लोग अवश्य क्षमा करेंगे। क्योंकि तुलसीदासजी ने. कहा है- "जो लरिका कछु अनुचित करहीं। तो पितुमात मोद मन भरहीं" तथा च "यतन्ते सज्जना नित्यं परदोषापनुत्तये" बस इस प्रकार मैने अपने चित्तको दृढ़कर भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी को ही इस पुस्तक के लिखने का आरम्भ कर दिया था। परन्तु लोगोंके अधिक आग्रहवश ग्रामान्तरों में चिकित्सा के लिये जाना और दो ढाई मास तक स्वयं बीमार रहने के कारण इसके प्रकाशित होने में इतना बिलम्ब होगया "श्रेयांसि वहु विघ्नानि" इस पुस्तक के लिखने में मुझे जो कुछ सहायता मिली है वह हिन्दीपत्र और हिन्दी पुस्तकोंसे ही मिली है इसलिये में उनके सम्पादकों का हृदय से कृतज्ञहूं।

वर्तमान सम्पादक श्रीवेंकटेश्वर समाचार बम्बई, और क्षत्रिय पत्रिका लाहौर ने क्रमशः लक्ष्मीवाई, और गुरु गोविन्दसिंह का चित्र भेजकर मेरी सहायता की है इस उपकार के लिये मैं आजन्म उनका ऋणी हूं इसके सिवाय बाबू किशनलाल मास्टर को भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने मेरी पुस्तक को सहर्ष अतिशीघ्र अपने " बम्बई भूषण " नाम के प्रेस में छापकर मुझे अनुग्रहीत किया ।

मेरी अस्वस्थता और औषधालय के विशेष कार्य भारके कारण पुस्तक में अनेक त्रुटि और अशुद्धि रहगई हैं । तथैव शीघ्रता के कारण समस्त चित्र पूना चित्रशाला में यथा साइज नहीं छपाये जासके हैं । यदि आप लोगों ने इसका आदर कर मेरे उत्साह को बढ़ाया तो मैं इस के दूसरे संस्करण में इसकी समस्त त्रुटियों को पूर्ण कर पुस्तक को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने का प्रयत्न करूंगा । पाठको ! सविनय निवेदन है कि इस पुस्तक को अपने मित्रों को दिखाने के साथ साथ इसके खरीदने का भी आग्रह कीजिये क्योंकि इस पुस्तक की नफा का चतुर्थांश किसी लोकोपकारक और देशहित कार्य में सर्वसम्मति से लगाया जायगा ॥

हाथरस
वसन्तपंचमी
सम्वत्
१९६९

पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री
(अलीगढ़-निवासी)

श्री गुरु गोविन्द सिंह

वन्देमातरम् गान ।

वन्दे मातरम् !

सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम् ।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां बरदां मातरम् ?
त्रिंशत्कोटिकंठकलकलनिनादकराले
द्विंत्रिंशत्कोटिभुजैर्धृतखरकरवाले
कथयन्ति जनास्त्वां कथं मातरबलाम् ।
बहुबलधारिणीं, नमामि तारिणीं,
रिपुदलवारिणीं मातरम् ।
त्वमेव विद्या त्वमेव धर्म्म

॥ सूचीपत्र ॥

श्री गुरु गोविन्द सिंह

वन्देमातरम् गान ।

वन्दे मातरम् !

सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम् ।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम् !
त्रिंशत्कोटिकंठकलकलनिनादकराले
द्वित्रिंशत्कोटिभुजैर्धृतखरकरवाले
कथयन्ति जनास्त्वां कथं मातरबलाम् ।
बहुबलधारिणीं, नमामि तारिणीं,
रिपुदलवारिणीं मातरम् ।
त्वमेव विद्या त्वमेव धर्म्म

त्वमेव हृदयं त्वमेव मर्म

त्वं हि प्राणाः शरीरे ।

बाहोर्मे त्वमेव शक्तिः

हृदये मातस्त्वमेव भक्तिः

तवैव प्रतिमा मातर्दृश्यते प्रति मन्दिरे ॥

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी

कमला कमलदल बिहारणी

वाणी विद्यादायनी

नमामि त्वाम्

नमामि कमलां अमलां अतुलां

सुजलां सुफलां मातरम् ।

वन्देमातरम् ।

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां

धरणीं भरणीं मातरम् ।

महाराणा प्रतापसिंह ।
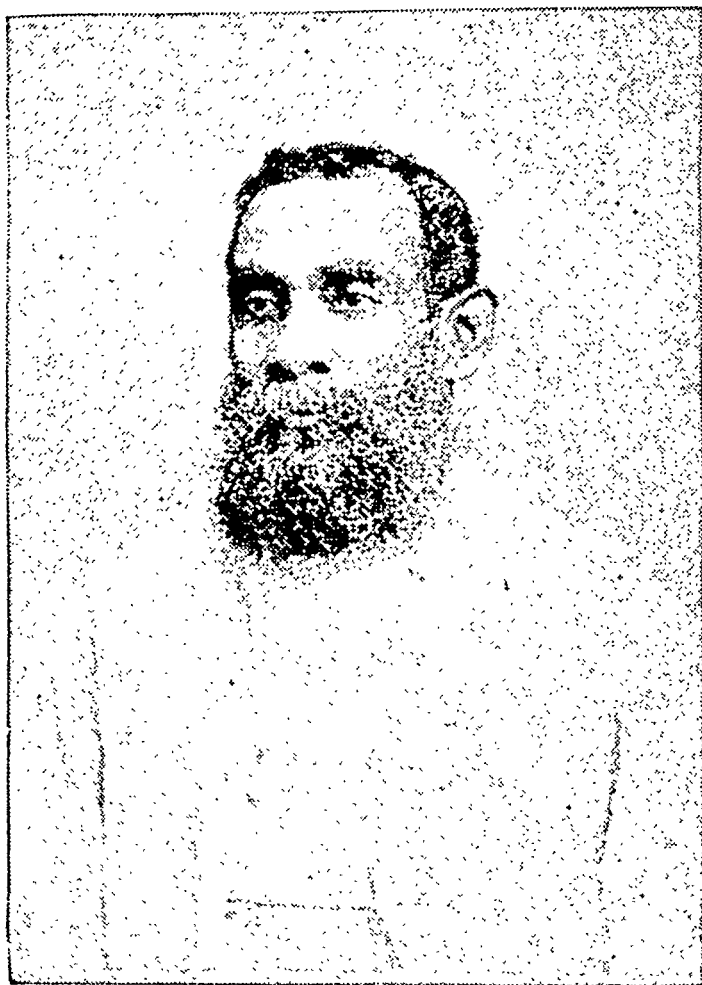
Surendranath Banerjee. c.s.p.

श्रीहरिः ।

वन्देमातरम् ।

* भारत नररत्न चरितावली *

॥ महाराणा प्रतापसिंह ॥

सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः कोवा न जायते ॥

राजपूतगण सूर्यवंशीय हैं । भारतमुखोज्वलकारी नरवरि महाराणा प्रतापसिंह के पिता महाराणा उदयसिंह सम्वत् १५९७ में चित्तौर गढ़ मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए उस समय अकबरने बड़े ठाट वाट से आक्रमण किया परंतु राजपूतों के प्रवल पराक्रम को न सहसका और हार कर लौट आया कुछ समय व्यतीत होने पर मेवाड़ में आपस की फूट उत्पन्न हुई देखकर अकवर को अच्छा अवसर मिला और उसी समय फिर चित्तौर पर चढ़ाई की उदयसिंह अपनी प्राण रक्षा कर भाग गये ॥ परंतु ऐसे समय में भी अपनी मातृभूमि के लिये प्राण देने में ही जन्म का साफल्य माननेवाले ।

" हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वावा भोक्षसे महीम् "

आदि क्षत्रियोचित वाक्यों को सफलित करने वाले स्वतन्त्रता प्रेमी नरवीरों की कमी नहीं थी ये ही नहीं किन्तु अनेक वीरपत्नियों ने भी रणक्षेत्र में प्राण वलि देकर स्वदेश प्रेम का सच्चा परिचय दिया था और बची हुई स्त्रियों ने

स्वयं अग्निदाह कर प्राण छोडे और सतीत्व की रक्षाकी । इस घोर संग्राममें तीस सहस्त्र क्षत्रिय पुत्र नष्ट हुए जयमल और पुत्त ने ऐसी वीरता दिखाई कि जिनका नाम आज तक भी बड़े आदर से स्मरण किया जाता है अन्त में प्रालब्धी अकबर की जयहुई और मेवाड़ का चित्तौरगढ़ अकबर के आधीन हुआ ।

उदय सिंह भागकर पिपली राज के बनों में बास करते हुए अरावली की घाठी में आए और वहीं पर सुन्दर झील महल आदि बनबाकर निवास करने लगे और उस का नाम उदयपुर हुआ । जोकि अबतक मेवाड वंश की राजधानी है । इस लडाई के चार ही बर्ष व्यतीत होने पर ४२ बर्ष की अवस्था में उदयसिंह ने प्राण परित्याग किये । इन के २५ पुत्र थे आपने अन्त समय में अपने प्यारे छोटे पुत्र जगमल को अपनी कुल की प्रथा के बिपरीत राज्याधिकार दिया परन्तु यह अनर्थ विचार-वान् वृद्ध मन्त्री और सरदारों से सहन न हो सका शीघ्रही जगमल को सिंहासन से उतार कर नरवीर महाराणा प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाकर अपना राजा वनाया । आपका शुभ जन्म ज्येष्ठ शुक्ला १३ सम्वत् १५९६ को हुआथा और फाल्गुण शुक्ला १५ पूर्णिमा सम्वत् १६१८ को गोघूंदे नामक ग्राममें गद्दीपर बैठे थे ॥

राज्याधिकार प्राप्त होने पर प्रतापसिंह अहर्निश इसी विचार में निमग्न रहने लगे कि हमारा प्रधान चित्तौरगढ किस प्रकार म्लेच्छों के हाथ से निकलकर हमारा कुल गौरव फिर देदीप्यमान हो । यद्यपि इस समय प्रतापसिंह के पास अकवर जैसे बलवान् वादशाह से लडने योग्य वृहती सेना तथा दृढ किला और ऐश्वर्य्य नहीं था तथापि प्रतापसिंह निज वाहुवल दृढता स्वदेशभक्ति और स्वतन्त्रता प्रेम में यही सोचते थे कि जव हमारे

पूर्वजों ने शत्रुओं का नाशकर इसकी रक्षाकीथी तो क्या हम न कर सकेंगे। तात्पर्य येहै कि महाराणा सर्वदा अकबर को तुच्छ दृष्टि से ही देखते थे। परंतु उस समय भारतनाशिनी फूटने चारों तरफ अपनी सपल्लवित वेल को अच्छे प्रकार फैला रक्खा था मारवाड बीकानेर, अम्बर, बूंदी, के ज्ञातीय राजा जोकि हमेशा से मेवाड राज्यके साथी थे अकवरके पक्षपाती होगये थे अधिक क्या प्रतापसिंह के सहोदर भ्राता सकता जी तथा सागर जीभी अकबर के पक्ष में मिलकर प्रताप के विपरीत संग्राम में लडने को कटिवद्ध हुए अतएव प्रसन्न होकर अकवर ने सागर जी को चित्तौरगढ दे दिया। अकवर की ऐसीही चतुराईयों का फलथा कि अकवर का राज्य इतना बढगया। इस प्रकार जैसे जैसे प्रताप के विरुद्ध कार्य होते जाते थे तैसे २ उनका उत्साह साहस और दृढ देशानुराग और भी बढताजाता था। कारण कि प्रताप ने माताके दुग्ध की कठिन शपथ की थी कि मैं अपनी मातृ भूमि का उद्धार किये विना कभी सुख से न वैठा रहूंगा॥

तभी तो नर बीर प्रताप अकबर से वलवान् प्रतापी शत्रु से २५ वर्ष लडे यद्यपि प्रताप और अकबरके बीच संग्रामकी अग्नि पहले हीसे छोंकर के वृक्ष के समान गुप्त रूप से सुलग रही थी तथापि लडाई का प्रकट कारण यह हुआ। राजा मानसिंह गुजरात जीत कर लौटते हुए प्रतापसिंह से मिलने के निमित्त उदयपुर आकर ठेरे प्रताप सिंह ने उन का यथायोग्य बडा आदर सत्कार किया परन्तु प्रतापसिंह उनके साथ सह भोजन के लिये उपस्थित न हुए किन्तु अपने पुत्र और मंत्री को उनकी सुश्रूषा के निमित्त भेज दिया। यह देख मानसिंह ने मंत्रीसे कहा कि प्रतापसिंह क्यों नहीं आये मंत्रीने उत्तर दिया कि महाराज! वो

शिर पीडा से व्यथित हैं इस कारण नहीं आसके । उन्हीं का आत्मज (पुत्र) आप की सेवा में मौजूद है । बस यह सुनते ही मानसिंह क्रोध से तप्त होकर बोले हां मैं उन की शिरपीडा (सिर दर्द) को भली भांति जानता हूं देखो प्रतापसिंह को समझा कर कह देना कि तुम ने स्वगृहागत मानसिंह का अनादर किया है । मैं शीघ्रही उन की शिर पीडा की महौषधि लेकर उपस्थित होऊंगा । इस प्रकार कह कर मानसिंह घोड़े पर सवार हुए ही थे कि प्रतापसिंह भी आगये और चलते २ मानसिंह प्रतापसिंह की ओर देखकर बोले कि हे प्रताप ! यदि मैं तेरे प्रताप को खण्ड २ कर धूल में न मिलाऊं तो मान नहीं यह सुन प्रतापसिंह ने तीव्र दृष्टि से देखते हुए बडे गाम्भीर्य के साथ उत्तर दिया कि रे कुल कलंक ! जिस मनुष्य ने नाशवान् लक्ष्मी भूमि ऐश्वर्य आदि क्षणिक सुखों के लोभ वश अपनी कुल मर्यादा और कीर्ति को एक दम नष्ट कर दिया है जिसने बिदेशीय म्लेच्छों का दासत्व स्वीकार कर जगत्प्रसिद्ध राजपूतों का सिर नीचा किया है उस के साथ सह भोजन क्या मुख देखना भी महा पाप है ॥

मानसिंह इस प्रकार क्रुद्ध होकर अकबर के पास पहुंचे और अत्यन्त गदगद होकर प्रतापसिंह द्वारा अपने को अपमानित होने का सविस्तार वृत्तान्त सुनाया अकबर ने क्रुद्ध होकर एक बृहती सेना चैत्र शुक्ला पंचमी संवत् १६३३ के दिवस प्रताप-सिंह से लडने के निमित्त भेजी जिस के साथ राजा मानसिंह आसिफखां, गाजीखां, सैय्यद अहमद, सैय्यद हाशिम, आदि सरदार भी मौजूद थे । इधर वीरवर्य महाराणा प्रतापसिंह भी अपने बडे २ सरदारों के साथ हल्दी घाटी में खडे हुए थे और मोर्चों पर वीर राजपूत सेना अपनी मातृभूमि की रक्षार्थ प्राणों

को तुच्छ समझ मुगल सैना से लडने के लिये बाट देख रही थी आहा क्यों नहो जिन सैनकों ने अपने स्वामी के ऐसे बचन सुन रक्खे थे उनको क्या कठिन था। जैसा कि श्री राधाकृष्ण दास जी ने लिखा है—

जबलों तन में प्रान न तबलों टेकहि छोड़ों।
स्वाधीनता बचाइ दासता शृंखल तोड़ों॥
जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तो जीवन।
नहि तातें शत गुणित मरन रन में जस पीवन॥
जोपे निज शत्रुहि मारि कें यह परतिज्ञा राखिहों।
तो या सिंहासन पै बहुरि पग धारण अभिलाषिहों॥

बस एका इक मुगल सैना आ पहुंची और घोर संग्राम आरम्भ हो गया पुरुषसिंह महाराणा प्रतापसिंह जिस ओर अपनी कृपाण को सीधी करते थे उसी ओर रुंडहीरुंड दृष्ट पड़ते थे रक्त की नदियां बहने लगती थीं मानों आज ही प्रतापसिंह योगिनियों के खप्पर भरने का उद्यापन कर रहे हैं। प्रतापसिंह मानसिंह के पूर्वोक्त वाक्यों को भूल नहीं गये थे अतः बड़ी चतुराई और कठिनता से अपने चेतक नामक घोडे को एड दे मानसिंह के हाथी पर कुदाकर एक बरछी मारी परन्तु मानसिंह के न लग कर हौदे को तोड़कर वह बरछी महावत के लगी और महावत मारा गया तथा हाथी भाग खडा हुआ बस यह देखते ही मुगल सैना प्रताप पर टूट पड़ी और आश्चर्य नहीं था कि महाराणा मारे जाते परन्तु स्वामिभक्त झाला मानसिंह राणा के छत्र और झंडे को लेकर एक ओर भागे जिस्से म्लेच्छों ने समझा कि यही प्रताप हैं सब उसी ओर झुकपड़े और इधर मौका देख राणा निकल गये झाला मानसिंह ने बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं

से संग्राम करते २ प्राण परित्याग कर स्वामिभक्ति तथा स्वदेश भक्ति का प्रशंसनीय कृत्यकर अपनी अटल कीर्ति को स्थापन कर गये। प्रतापसिंह की सैना अकबर की इतनी बड़ी सैना को जीत तो न सकी परन्तु वह समय पास था कि मुगल सैना भाग उठती। परन्तु महतरखां नामक सरदार ने यह चालाकी कि थोड़ी सी फौज को भगाये हुए लाया और प्रसिद्ध करादिया की सरकार अकबर स्वयं आ पहुंचे। बस इसी से सैना फिर ज्यों की त्यों जम गई और प्रतापसिंह की थकित सैना निराश हो लौटपड़ी। ग्वालियर के राजा मानसिंह का एक मात्र पुत्र इसी संग्राम में मारा गया, धन्य मानसिंह जो ऐसे शोक के उपस्थित होने पर भी स्वदेश हित बड़े साहस के साथ लड़े और संग्राम में ही प्राण त्याग किये "महाराणा प्रताप" एका की अपने चैतक नामकघोड़ेपर सवार हो १ ओर दौडे जातेथे कि दो मुगल सैनिकों ने इने पहचान कर पीछा किया कितनेही घाव होने पर भी चैतक प्रतापसिंह को ले बीच में आई हुई नदी को फांद गया अपनेसहोदर भाईकी यह दशा "सक्काजीसे" न देखी गई उन्होंने बड़ी बीरता के साथ दोनों मुगलों को काटकर पीछे से प्रताप सिंह को ठहरने की आवाज दी प्रतापसिंह ने मुख फेर शत्रु पक्षपाती सक्का जी को देखकर कहा हे क्षित्रिय नाम धारी देश शत्रु! क्या मुझे अकेला जान बदला लेने आयाहै आ इस अवस्था में भी मैं तुझे दण्डदेने योग्य हूं। यह सुन सक्का जी तुरन्त घोडे से कूदकर महाराणा के चरण पकड़ कर गद गद हो कहने लगे भय्या प्रताप! क्षमा करो २ मैं अपराधी हूं हा! तुम्हारे समान देशहितैषी वीर धर्म्म रक्षक भ्राता से शत्रुता कर विदेशी यवनों का साथ दिया मेरे बराबर संसार में कोई नीच न होगा

भैय्या प्रताप! एक बार हृदय से कहो कि सक्ता तेरा अपराध क्षमा किया सहोदर के इन वाक्यों को श्रवण कर उदार चरित प्रतापसिंह ने सक्ता जी को उठाकर हृदय से लगा लिया और सक्ता जी ने उक्त दोनों मुगलों की कथा कह सुनाई इस प्रकार दोनों भ्राताओं में परस्पर स्नेह मेल हो गया और सक्ता जी प्रताप के पक्षपाती हुए इस जगत्प्रसिद्ध हल्दी घाट की लडाई के बाद प्रतापसिंह ने कुंभल मेर के किले में राज्य गद्दी स्थापन की। और समस्त मेवाड स्थल को उजाड कर मैदान बना दिया जिस से शत्रु को कुछ भी हाथ न लगे नगर के मनुष्यों को पहाडियों में ठैराकर मालवा अजमेर गुजरात के रास्तों पर लूट मार प्रारम्भ करादी अतएव 'अन्न आदि व्यापारी बस्तुओं के आने जाने में बडी कठिनाई पडने लगी और बादशाही लश्करों को बडी बिपत्ति भोगनी पडी बर्षा के कारण कुछ दिन लडाई बन्द रही। फिर शरद ऋतु के प्रारम्भ सेही लडाई भी प्रारम्भ होगई यहां पर भी प्रतापसिंह बहुत समय तक बडी योग्यता के साथ शत्रुओं का सामना करते रहे परन्तु यहां एक क्षत्रिय कुलांगार राजपूत ने अकबर के धोखे में आकर कुम्भल मेर के समस्त कुओं को भ्रष्ट करा दिया इस कारण लाचार हो प्रतापसिंह को कुम्भल मेर परित्याग कर पहाडियों के बिलकुल भीतर निवास करना पडा। यहां भी शत्रु सैना सब तरफ से प्रतापसिंह को घेरने लगी अधिक क्या स्वयं अकबर भी अपने सरदारों को समझाने बुझाने के लिये कुछ दिन मेवाड में ही रहे परन्तु किस की सामर्थ्यथी कि दृढ प्रतिज्ञ स्वदेश हितैषी प्रतापसिंह को मार सके व पकड सके। वो बडी बीरताके साथ शत्रुओं के बीच से निकल गये और अपने विरुद्ध जाती हुई फरीदखां की सेना को एक घाटी में रुंध कर नष्ट कर दिया॥

अपनी उदारता से केवल फरीदखां को प्राण दान दिया जिसके लिये फरीदखां उमर भर प्रताप के गुण गान करता रहा इस प्रकार लड़ते भागते बरसों ब्यतीत होगये और प्रताप का दल तथा ऐश्वर्य घटता गया तथापि महाराणा ने मुगल सेनासे लड़ने में कदापि पश्चात् पद न दिया किन्तु मौका पाकर बराबर आक्रमण करते रहे और शत्रु की बलवती सेना के कारण एक बनसे दूसरा बन एक घाटी से दूसरी घाटी बदलते और कष्ट उठाते हुए अपने सच्चे स्वदेश हितैषी साथियों के साथ स्त्री बाल बच्चों की रक्षा करते रहे यही नहीं किन्तु उनको ऐसे ऐसे हृदय बिदारक दुःस्सह कष्ट भोगने पडे कि कोई २ दिबस तौ बच्चों तक को भोजन न मिला परन्तु स्वतन्त्रता प्रेमी धीर वर महाराणा प्रताप ने अपार दुःखों को बडे आनन्द के साथ सहन किया परन्तु बिदेशीय म्लेच्छों की पराधीनता स्वीकार न की। सत्य कहा है–

पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग मांही।
को पहरे दासत्व शृंखला निज पग मांही॥
इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम॥

आपकी ऐसी अनूपम वीरता तथा दृढता का प्रभाव शत्रु पक्ष पर भी हौने लगा अकबरके प्रधान सलाहकार 'खानखाना, इनके चरित्र पर मोहित होकर अकबर को समझाने लगे कि जहांपनाह ! ऐसे वीर शत्रु को अधिक सताना योग्य नहीं है, इधर प्रतापसिंह अपने को अधिक धनहीन तथा सेना हीन बिचार कर सच्चे स्वदेश प्रेमी साथियों को संग ले पंजाब की ओर चल पडे अराबली को परित्याग कर वनकी सीमा को पार किया।

चाहते ही थे कि महाराणा के पुस्तैनी मंत्री भामाशाजी ने महाराणा को रोक कर प्रार्थना की कि महाराज! आप इस भूमि को अनाथ छोड कहां जातेहैं प्रभो! विदेशियों के दासत्व रूप नर्कमें निवास करना कौन स्वीकार करैगा महाराज निराश न होइये यह जो कुछ सम्पत्ति ÷ है आपकीही है कृपाकर इस धन से दूसरी सेना तयार कर शत्रुका नष्ट कर जन्मभूमि के उद्धार करने में प्रवृत हूजिये। भामाशाजी की इस अनिर्वचनीय उदारता की और देशभक्ति की कीर्ति आजतक भी मेवाडके घर घर गूंज रही है।

बस फिर क्या था महाराणा की हृदयाग्नि वायुरूप भामाशाजी के साहाय्यसे फिर धधक उठी और एक बृहती सेनाको सुसज्जित कर देवेर में पडी हुई मुगल सैना पर जा टूटे और उसके शाहवाज नामक सैनापति को काटकर सकल सैना को नष्ट भृष्ट कर डाला और बडी वीरता के साथ कुम्भलमेर और उदयपुर भी शत्रुसेना को यमलोक पहुंचा कर छीनकर स्वायत्ती कृत करलिया। निदान एकही वर्ष में समस्त मेवाडपर स्वाधीन स्वराज्य स्थापन करालिया। महाराणा ने उस कुल कलंक अभिमानी मानसिंहके कटुवचनों को विस्मरण नहीं किया था अतएव उसकी अम्बर राजधानी के सर्वोत्तम मालपुरा वाजार को एकही उत्कट आक्रमण में लुटवाकर धूल में मिलवा दिया परन्तु फिर म्लेच्छराज अकबर ने प्रतापसिंह के साथ संग्राम करने का साहस न किया, और महाराणा प्रतापसिंह का अवशिष्ट जीवन शान्ति सुखके साथ स्वप्रजा पालन

÷ भामाशाजी ने इतना धन प्रदान कियाथाकि जिससे १ बडी पूरी सेनाका एक वर्ष तक अच्छे प्रकार प्रबन्ध होसके।

पोषणमें व्यतीत हुआ क्यों न हो (जो हठ राखे धर्मकी तिहि- राखे करतार) यद्यपि इसके उपरान्त महाराणा को किसी लडाई में कष्ट नहीं उठाना पडा तथापि पहले ही घावों से तथा दुस्सह शरीर यन्त्रणा और मानासिक चिन्ताओं से प्रताप का शरीर जर्जरित तो होही रहा था इस में भी चित्तौरगढ की पराधीनता आदि मानासिक दुःस्सह दुःखों ने इनकी आरोग्यता का बिलकुल ही नाश कर दिया और ५७ बर्ष की अवस्था में ही वह आसन्न मरण हुए। मरणासन्न अवस्थामें महाराणा एक पर्णकुटी में पडे हुएथे। प्रधान २ सरदार और उनके पुराने कष्टों के साथी आस पास बैठे हुए आप की चिर विदाई के हृदय विदारक दुःसमय को देख रहे थे। कि एका एक महाराणा का दुखभराऊर्द्धश्वास सुनाई पडा यह देख एक विचारवान् वृद्ध सरदार ने पूछा महाराज! ऐसा क्या कष्ट और गहरी चिन्ता है जो सुखपूर्वक प्राण पयान नहीं करते यह सुन प्रतापसिंह ने कातरवाणी से कहा हाय!! जिस जन्म भूमि और जिस स्वतन्त्रता को मैंने रक्त बहाकर रक्षा की है जिस मातृभूमि के प्रेम में मैंने रात्रि का दिन और दिन की रात्रि की है॥

हा! मेरा पुत्र अमरसिंह उस स्वतन्त्रता को नष्टकर बिलास के वशिभूत होकर विदेशीय मुगलों की दासता स्वीकार करेगा यह कह मुमूर्षु नर बीर प्रताप अपनी भुजाओं को फडकतीसी करते हुए कुशशय्या से उठने की चेष्टा करने लगे। यह देख सब सरदारों और राजकुमार ने बाप्पारावल के सिंहासन का स्पर्श कर शपथ की कि महाराज! हम लोग कदापि बिलासता में न फसेंगे और सर्वदा शत्रु से लडते हुए चित्तौरगढ छीनने की प्राण पणसे चेष्टा करते रहेंगे। यह सुन उनका हृदय शान्त हुआ

और सुखपूर्वक प्राण परित्याग कर अपने सम्बन्धी और प्रजा समूह को चिरकाल के लिये अथाह शोक सागर में डुबो गये ॥

भारत बर्ष आदि काल सेही बीरता के लिये विख्यात है भारत बर्ष ही वीरता का प्रधान केन्द्र स्थल है आसन्न भूत काल में भी महाराणा प्रतापसिंह, छत्रपति शिवाजी, और सिक्ख गुरू गोविन्दसिंह, भारतीय बीरताके योग्य दृष्टान्त रूपहुएहैं इनमहा पुरुष पुंगवोंमें भी "महाराणा प्रताप" सर्व श्रेष्ठ कहे जासक्ते हैं कि जिन का अकबर सरीके प्रबल प्रतापी प्रतिद्वंदी के साथ कायरता, अधीरता, विश्वासघात, अनीति, कपट, और अयोग्यता के व्यवहारका लेशमात्रभी नहीं पायाजाता स्वीयराज्यका उद्धार ही एक मात्र उन का उद्देश्य था स्वदेश प्रेमही उनकी कर्तव्य परायणता का मुख्य हेतु था प्रतापसिंह की मूर्ति और उनका जीवन चरित्र देवत्व गुण बिशिष्ठ है उनकी मूर्ति और उनका शिक्षापूर्ण चरित्र भारत बर्षके घर२ में प्रत्येक बाल युवा वृद्ध स्त्री पुरुषों को पूजने योग्य है ॥

॥ इतिशुभम् ॥

———

श्रीहरिः ।

महाराज शिवाजी ।

असमान मिवौजांसि सहसा गौरवेरितम् ।
नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोपि स मतः पुमान् ॥

भारतबर्ष की लोक विख्यात वीरता ऐश्वर्य स्वाधीनता समय चक्र के अनन्त सोतेमें शनैः २ डूबे चले जारहेहैं । जो भारतवासी साहस और वीरता में प्रसिद्ध थे जिन्होंने बीर समाज में सर्वोत्तम स्थान प्राप्त कर अक्षयकीर्तिका संचय किया था आज उन्हीं की संतान मुगलों की आधीनता रूप शृङ्खला में जकडी जारही है । चारों तरफ बादशाही जलजला छारहाहै । औरंगजेब के कठोरशासन का चारो दिशाओ में भय होरहाहै । कौन कह सक्ता है कि ऐसे समय में भारत के दक्षिण प्रान्त में पश्चिमी शैल माला सें आच्छन्न क्षेत्रमें स्वाधीनता की अद्वितीय मूर्ति भारतकी बीरता की आदर्श छटा एक महाशक्ति जन्म लेगी । और थोडेही से समय में वह अपनी वीरता से बडे बडे बादशाहों को उनके अत्याचारों का मजा चखाकर भयभीत कर डालेगी । येही नहीं किन्तु उस तेजास्विताके महासागरमें दक्षिणसें आर्यावर्त पर्यन्त निमग्न होजायगा । सहृदय पाठको ! यह महाशक्ति थी महाराज शिवाजी । शिवाजी के पिता का नाम था शाहजी यह बीजापुर के नवाब के खास कर्मचारियों में एक थे आपका विवाह जीजावाईनाम्नी महाराष्ट्र कन्या से हुआ था जोकि हमारे चरित नायक की माता थीं । हिन्दू राज कुल चूडामणि भवानी

भक्त महाराज शिवाजी का जन्म सन् १६२७ ई० के मई मासमें पूनासे चालीस मील उत्तर दिशा में शिवनारी किले में हुआ था इसी किले की अधिष्ठात्री भगवती का नाम था शिवाई देवी अतएव इनकी माताने इनका शिवाजी नाम रक्खा था शिवाजी के जन्मके तीन वर्षके बादही शिवाजी के पिता ने तुकाबाई नाम्नी दूसरी स्त्री से विवाह करालिया था इसीसे शाहजी की प्रीति प्रथम स्त्री जीजावाई से एकदम कम होगई अतएव अनुमान छः वर्षतक शिवाजी को अपने पिता के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु शाहजीने जीजाबाई और शिवाजीके बंदोबस्तके लिये दादोजी कोन्डदेव नामक बिचारबान् वृद्ध ब्राह्मण को नियत करदिया था दादोजी राज काजमें चतुर और शक्तिसम्पन्न थे उन्होंने पूना में एक बडा महल बनाकर जीजा बाई और शिवाजीको रक्खा इसीमें शिवाजीके छःबर्ष पूर्ण हुऐ। उस समय महाराष्ट्रबासी लिखने पढने की अपेक्षा क्षत्रियोचित वीरत्वविशिष्टगुणों के उपार्जन करनेमें अधिक सन्नद्ध रहतेथे। शिवाजी अपने नामके हस्ताक्षर भी नहीं कर सक्ते थे परन्तु वाणविद्या तथा तलवार चलाना बरछा चलाना और घोड़े की सवारी करना आदि गुणों में अद्वितीय थे। शिवाजी हिन्दू धर्मानुसार कार्य करने में महान् प्रसिद्ध थे महाभारत, रामायण, गीता, भागवत, आदि कथाओं के सुनने में वड़ेही प्रसन्न होते थे हिन्दूधर्म पर इतनी अधिक श्रद्धा होने के कारण ही उन्होंने हिन्दू नामके गौरव रक्षा के करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कीथी। विपत्ति की घन घटाओं को चारों तरफ सें उपस्थित होने पर भी उन्हों ने (निंदंतु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवंतु। लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतुवा यथेष्टं अद्यैव वा मरण मस्तु युगांतरेवा धर्मात्पथः प्रविचलंतिपदं

न धीराः) इस श्लोक को पूर्ण रूपेण चरितार्थ किया था स्व-धर्मप्रेम जातीयता और देशानुराग की जड़ उनके चित्तमें अच्छी तरह जमकर अटल होगई थी जिस समय बादशाह औरंगजेव के प्रताप से उद्धत धर्मान्ध अन्यायकारी मुसल्मानों ने निरपराध हिन्दू प्रजा को कष्ट देने की सीमा पराकाष्ठा को पहुंचा रक्खी थी उस समय वीर शिरोमणि स्वाधीनता के सच्चे उपासक शिवाजी ने अपनी प्रशंसनीय वीरता से इन दुष्टों को छिन्न भिन्नकर दक्षिण प्रान्त में स्वाधीन स्वराज्य स्थापित कर भारतमाता से उनृणत्व प्राप्त किया था। सोलह वर्ष की उमर के लगभग ही शिवाजी इतने साहसी होगये थे कि घुड़-सवार सैनिकों के साथ अपने प्रान्त के कुल दुर्गम भयंकर पहाड़ों को देखडाला जिस्से कि वह ऐसे २ स्थानों के अनेक युद्ध रहस्य जानगये। शिवाजी मावाल नामक ज्ञाति के पुरुषों को बड़े स्नेह से अपने पास रखते थे इन्हीं के भरोसे महाराष्ट्र देश के अनेकों पहाड़ी किले अपने काबू में कर लिये थे यह किले वीजापुर के नवाब के थे अतएव शिवाजी और नवाब में विरोध होगया और अफ़ज़लखानें वीजापुर की सैना के सैनापति हो अनेक हिन्दू धर्म मंदिरों को तोड़ते फोडते रायगढ़ में शिवाजी को परास्त करने के लिये प्रस्थान किया इधर शिवाजी ने ये सुनकर कि वह हिन्दूधर्म के तीर्थों को अनादर करता आरहा है रायगढ में मातृदेवी को नमस्कार कर प्रतापगढ़ को प्रस्थान किया। अस्तु अफ़ज़लखाने जंगली दुर्भेद्य पहाड़ी मार्गों में सेना को लेकर जाना कठिन विचार कर शिवाजी को चतुराई से वश करने के लिये पं. गोपीनाथ पन्त को प्रतापगढ़ भेजा। दूत रूप से गये हुए गोपीनाथ से शिवाजी मिले गोपीनाथ ने

बड़ी धीरता के साथ प्रार्थना की कि श्री महाराज ! शाहजी के साथ अफ़जलखां की घनिष्ट मैत्री है अतएत अफ़जलखां अपने मित्रपुत्र को कोई तरह का दुःख देना उचित नहीं समझते और वह आप से बैर भाव न करके आपको थोड़ी सी जागीर का अधिकारी बनाया चाहते हैं। दूतके इन बचनों को सुनकर शिवाजी मन में हंसकर और प्रकाश में विनय कर बोले में इतने में ही सन्तुष्ट हूं में तो नवाब साहिब का एक सेवक हूं दूत भी इन की इन विनय भरी बातों को सुनकर पुलकित हुआ कि कार्य सिद्ध होगा इसके अनन्तर शिवाजी की आज्ञानुसार गोपीनाथ एक योग्य स्थान में ठहराये गये और उस के कुछ दूर पर उन के साथ के आदमी स्थानान्तर में ठहराये गये एक दिवस ठीक आधीरात को शिवाजी गुप्तरूपेण गोपीनाथ के पास पहुंचे और अपना परिचय देकर बोले कि विप्रवर! मैंने जो कुछ ये किया है हिन्दू जाति के नष्टप्राय गौरव की रक्षा करने के लिये गौ। ब्राह्मणों की रक्षा करने तथा पवित्र देवमंदिरों को अपमानित करनेवाले एवं व्यर्थ ही हिन्दू प्रजा को कष्ट पहुंचाने वाले मदान्धों को उचित दंड देने के लिये किया है में इस कार्य में त्रिलोकवंद्या सृष्टिस्थितिलयकर्त्री निखिल-दुष्टहंत्री महामाया भवानी की आज्ञा से प्रवृत्त हुआ हूं आप ब्राह्मणहै आप की सहायता रक्षा करना मेरा परमधर्म है ब्राह्मणों को मेरा शुभाभिलाषी होना आवश्यक कार्य है शिवाजी ने धीर भाव से इतना कहकर गोपीनाथ को एक ग्राम देने की प्रतिज्ञा की गोपीनाथ इन नवायुवक हिन्दूवीर के अगाध साहस और सच्ची धर्मरक्षा तथा अलौकिक देशभक्ति को देख एक दम स्तंभित होगये और गोपीनाथ कुछक्षण विचार कर धीरता

साथ बोले कि मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सब प्रकार आप के कार्यसाधन में सहायक होऊंगा इस प्रकार शिवाजी की आशा सफल हुई और गोपीनाथजी शिवाजी के प्रधान साथियों में एक हुए बस फिर क्या था शिवाजी ने कृश्णाजी भास्कर नामक विश्वास योग्य भृत्य को अनेक उत्तम २ भेट के पदार्थ देकर और गोपीनाथजी को साथकर अफ़्जलखां के पास भेजा और कहवा दिया कि शिवाजी आपसें मैत्री करनेको तयारहैं वह नवाबसें व्यर्थ विरोध नहीं किया चाहते अफ़्जलखां प्रसन्न होकर गोपीनाथ की राहके माफिक शिवाजी से मिलने को तयार होगये शिवाजी और अफ़जलखां के मिलने का स्थान शिवाजी की इच्छानुसार प्रतापगढ किले के नीचे के भाग में निश्चित हुआ शिवाजी ने अफजलखां के आने के मार्ग को वृक्षादिक कटबाकर स्वच्छ करदिया परंतु इधर उधर का वैसाही सघन रहा शिवाजी ने उसमें अपनी मावालजाति की बीर सैना को छुपकर रहने का प्रबंध करदिया अफजलखां पंदरहसौ सैना के साथ मिलने गया परंतु सैना किले से दूर पर छोडदी गई एका की अफजलखां एक शस्त्रधारी सेबक के साथ पालकी में बैठकर उक्त स्थान पर पहुंचे अफजलखां दृढ वर्दी और तलवार से सुसाज्जित था इधर शिवाजी भी लोहे के कवच (वख्तर) को धारण कर तथा ऊपर से सूती वस्त्र पहनकर वृश्चिक तथा व्याघ्रनख इन दो गुप्तास्त्रों से सुसाज्जित होकर शनैः २ किले से उतर अतीव विनय के साथ नमस्कार करते हुऐ अफजलखां के समीप आये लौकिक नियमानुसार दौनों हृदय से हृदय मिलाकर मिलेही थे कि अफजलखां जोर से हाय हाय कर पुकारने लगा कि मैं धोखे में मारा गया

कारण कि मिलतेही शिवाजी ने इसके पेटमें व्याघ्रनख* चला दिया था अफजलखां ने विव्हल होकर शिवाजी के ऊपर बडे जोर से तलवार चलाई परंतु वो तलवार सिवाय सूती कपडोंके फाड देने के शिवाजी का कुछ न करसकी एक क्षणमें वीर शिवाजीने अफजलखां को भूमि पर लिटा दिया अफजलखां का सेवक यह देख मौन न रह सका उसने बडे धैर्य से स्वामिशत्रु शिवाजी के ऊपर प्रहार किये और बहादुरी का परिचय दिया परन्तु शीघ्रही वह भी भूमिपै गिर कर चिरनिद्रा को प्राप्त हुआ अफजलखां के कहार अफजलखां को डोली में लेकर भागना चाहते थे किन्तु वो ऐसा न कर सके शिवाजी और शिवाजीके सैनिकों ने आकर अफजलखां का शिर काटलिया इधर इशारे के साथ ही मावाली सेना मुगलसेना पर जाटूटी और इनके अथाह पराक्रम को न सह कर भाग खडी हुई शिवाजी की जय निनाद से महाराष्ट्र देश गूंजने लगा थोडे ही से समय में उनके पास सेना तथा सम्पति की अधिक वृद्धि हो गई। जिन्होंने अपनी अवस्था की समस्त यात्रा सत्य मार्ग से ही परिसमाप्त की है वह शिवाजी के इस कार्य को विश्वासघाती कह कर निन्दा कर सक्ते हैं किन्तु जिन्होंने राजनीतियों के कूट तत्वों को भले प्रकार मनन कियाहै वो इसको और ही भाव से समझेंगे। ठीक भी है। व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः) शिवाजीने अच्छे प्रकार निश्चित कर लिया था कि चालाकों के साथ चालाकी के बिना भारत के गौरव की रक्षा कदापि न हो सकेगी जिन्होंने भारतवासियों को धोखा देकर अपनी खोटी इच्छा पूरी की है उनके साथ सत्यता का

* व्याघ्रनख सिंह के नख के समान तेज बांका होताहै।

कार्य करने से निश्चित मनोरथ पूरा न होगा। कुछभी होजो लोग सच्ची स्वदेशभक्ति के रंग में सराबोर होकर दुर्दम्य चालाक शत्रु के अत्याचार को नष्ट करना अच्छा नहीं समझते उनके हृदय पर शिवाजी के उक्त कार्य का आदर कदापि नहीं हो सक्ता। बीजापुर की सेना को जीतने के अनन्तर कोकण देश का अधिकांश शिवाजी के अधिकृत होगया पुनः शिवाजी ने बीजापुर नवाब के पन्हाला नामक दुर्भेद्य किले के स्वायत्तीकृत करने में कमर कसी इसमें भी शिवाजी ने बडी ही चतुराई की कि आपने अपने विश्वासपात्र सेनाके सरदारोंसे बनावटी लडाई कर डाली और वो सर्दार कृत्रिम रुष्टता दिखा कर आठसौ सैनिकों के साथ शिवाजी का सम्बन्ध तोड उस किले के सर्दार के पास पहुंचे और उस मूर्खने इनकी माया को न जानकर प्रसन्नतापूर्वक किले में रख लिया और इस तरफ शिवाजी अपनी सेना के साथ शीघ्रही किले पर टूटपडे शिवाजी के जो सर्दार पहले से शरणापन्नकी समान किले में रहते थे वो एक रात्रि को किले से चिपटे हुए वृक्षों के द्वारा शिवाजीके दल में आकर चुपके से दो चार सैनिकों को तथा शिवाजी को अपने साथ उसी प्रकार किले के भीतर लिवा लेगये फिर क्याथा उन्होंने किलेका द्वार खोलदिया और सुगमतापूर्वक किले को अधिकार में किया इस भांति कई विजय प्राप्त करनेके कारण शिवाजीकी सेना शक्ति और ऐश्वर्य अधिकर बढने लगा शिवाजी की घुडसवार सेना यहां तक उद्धत हो गई कि दिनदहाडे बीजापुरके परकोटे पर लूट तराज करने लगी यह देख नवाव को अत्यन्त क्रोध आया और अपनी आधीनता स्वीकृत कराने के लिये वीरश्रेष्ठ शिवाजी के पास दूतको

भेजा भला शिवाजी जैसे सच्चे वीर स्वतन्त्रताप्रेमी को ये कब सह्य था उन्होंने बडे गाम्भीर्यके साथ उत्तर दिया कि दूत! तुम्हारे नवाव का क्या कुछ कर देना है जो मैं उनकी आज्ञा पालन करूंगा अन्यथा तिरस्कृत किया जायगा। दूत लौट आया नवाव ने शिवाजी के इस गर्व से क्रुद्ध होकर शिवाजी के पिता शाहजी को कैद में रखदिया और कहदिया कि तुम्हारा पुत्र जब तक मेरी आधीनता स्वीकार न करेगा तब तक इसी प्रकार कष्ट भोगोगे और समय पर तुमको जीवित ही समाधि में गढवा दिया जायगा। इस बात का पता लगने पर पहिले तो शिवाजी कुछ सशंक हुए परन्तु शीघ्रही अनुचित कार्य में लग गये शिवाजी ने दिल्लीश्वर शाहजहां से इसकी इस दुष्टता को कहला भेजा बादशाह के कथन से नवाव ने शाहजी को छोड दिया शाहजी रायगढ चलेगये शिवाजी ने शाहजी को गद्दीपर बैठाकर सर्वदा चरणसेवा की। पाठक शिवाजी की पितृभक्ति को विचार देखें कि कैसी गम्भीर है। अफजलखां परास्त हो चुका था इसके अनन्तर नवाव ने अविसिनी नामक सर्दार को बडी भारी सेना लेकर पान्हाला किले पर भेजा परन्तु सब चेष्टा व्यर्थ हुई तथा इस बार भी शिवाजी की जय हुई और अविसिनी मारागया। सहृदय पाठको! जिस समय औरंगजेब ने अन्याय की सीमा को समाप्त किया चाहाथा अपने आप अपने पिताको बधकर राज्यसिंहासन लेना चाहा था उस समय शिवाजी ने औरंगजेब की सहायता नहीं की थी बल्कि और अनादर कर उसका पत्र कुत्ते की पूंछ में बंधवा दिया था उसी समय से औरंगजेब और शिवाजी में पूर्ण वैमनस्य होगया था तभी से औरंगजेब शिवाजी को पहाडी मूसा कह कर हानि

पहुंचाने की चेष्टा किया करता था अस्तु औरंगजेव
वृद्ध पिताको कैदी बना गद्दी को सुशोभित करने लगा। इधर
शिवाजी और नवाव में संधि हो गई और समस्त कोकण देश
में शिवाजी की जय पताका फहराने लगी इस समय शिवाजी
के पास सात हजार अश्वारोही (घुडसवार) सेना और पचास
हजार पैदल सेना मोजूद थी। परन्तु शिवाजी इतने पर ही चुप
न रहे इस विभव होने पर भी उन्होंने कर्तव्य से मुख न मोड़ा
ठीकभी है (समूलघातमघ्नन्तः परान् नोद्यन्ति मानिनः। प्रध्वं
सितान्धतमस स्तत्रोदाहरणं रविः) नरपुंगव जब तक अपनेसमस्त
शत्रुओं का नाश नहीं करलेता तब तक उसका पूर्णविभवनहीं
बढताजिसप्रकार कि सूर्य अन्धकार को बिलकुलनाश किये बिना
पूर्ण उदय नहीं होता। शिवाजी बेधडक दिल्ली के अधिकार
में लूट कराने लगे यह देख औरंगजेब ने शायस्ताखां को हुक्म
दिया कि जाओ खूब सेना लेजा कर रायगढ को घेरलो और
शत्रु को उचित दंड दो शिवाजी इसे आता सुनकर सिंहगढ
में आजमे शाइस्तखां शिवाजी की चतुरता को जानताथा इस
लिये उसने पूना के समीप अपनी सेना को बडी बुद्धिमानी से
सुरक्षित रक्खा था यहां तक कि कोई मरहटा शस्त्र लेकर पूना
के भीतर नहीं घुसने पाता था कुछ भी हो इसका ऐसा कठोर
प्रबन्ध होने पर भी शिवाजी के कार्य में कुछ भी अवरोध न
हो सका एक दिन घोर अन्धकारमयी रात्रि को एक बरात पूने
में जा रही थी चतुर शिवाजी अपनी सेना को एक ओर ठहरा
कर सिर्फ पच्चीस साहसी मनुष्यों को साथ लेकर चुपके से इस
बरात में जा मिले बरात आनन्द मंगल मनाती पूना में जा

पहुंची इसी के साथ शिवाजी भी पूना में घुसकर अपने स्थान में जा पहुंचे जिस्में कि शाइस्ताखां सो रहा था इनकी कुटुम्ब की स्त्रियों ने आक्रमणकारियों को जान शाइस्ताखां को जगा दिया महल की खिडकी में होकर शाइस्ताखां यथा कथंचित् प्राण बचा कर भाग तो गया परन्तु उसके हाथ की एक अंगुली कट गई शाइस्ताखां का पुत्र और कुछ नोकर लोग मारे गये शिवाजी की जयध्वनि होने लगी शिवाजी जय पाकर रात्रि में ही सिंहगढमें लौट आये दूसरे दिन घुड़सवार मुगल सैनिक सिंहगढ़ के सामनेको रणदुंदुभी बजाते हुए आते दृष्ट पडे उसी समय शिवाजीने तोप लगवाकर इन का मान मर्दन किया और एक चतुर सेनापति को आज्ञा देकर इन को दूर भगादिया । इसी प्रकार शिवाजी की विमल कीर्ति सारे संसार में फैलने लगी इस के वाद शिवाजी औरंगजेव के सूरत नगर से बहुतसा धन लूटते हुए रायगढ जा पहुंचे । ध्यान रहे कि शिवाजी के पास जलयुद्ध के बहुत से जहाज भी मौजूद थे जिन के द्वारा बादशाही फौजी जहाजों को जीतकर स्वयं अधिकृत करलिया था । इस के अनन्तर शिवाजी के पिता का देहान्त होगया तब उन्होंने सिंहगढ जाके बडी भक्तिपूर्वक पिताजी का श्राद्धादि कर्म किया । अनन्तर विचारवान् मन्त्रियों के साथ राजप्रबन्ध करने लगे तथा राजा पदसे विभूषित मुद्रा (सिक्का) आदि बनवाने लगे । साहसी वीर की दृढ प्रतिज्ञा पूर्ण हुई वो स्वाधीन राजा कहलाने लगे । औरंगजेव शिवाजी के स्वतन्त्र राजा बनजाने और सूरतनगर में लूट-मार कराने से वहुत ही चिढगया उसने इन के दमन करने के लिये जयसिंह और दिलेरखां को भेजा शिवाजीने संग्राम

न किया किन्तु सन्धि करने की बात उठाई तथा रघुनाथ पन्त को जयसिंह के पास भेजा जब रघुनाथ पन्त जयसिंह के पास से इष्ट विषय में बात चीत कर आये तव शिवाजी निशंक होकर सिर्फ १० पांच सेवकों के साथ जयसिंह से मिलने गये शिवाजी के पहुंचते ही जयसिंह ने उठ कर शिवाजी को हृदय से लगाया और अपनी गद्दी पर दाहिनी ओर बैठाया। संधि के नियम तय होकर दिल्ली को भेजे गये बादशाह ने उन नियमों को स्वीकृतकर वापिस कर दिये इसके कुछ ही दिन बाद शिवाजी वादशाह की ओर से बीजापुरके नवाब से लडने लगे। द्वितीयबर्ष औरंगजेव का निमंत्रण आने पर शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी और पांचसौ सवार तथा एक हजार मावाली सेना लेकर वाद-शाह से मिलने के लिये दिल्ली को चलदिये। शिवाजी दरवार में गये परन्तु उनको योग्य उच्चस्थान बैठने को न दिया गया इससे वीर शिवाजी अप्रसन्न होकर वहां से उठकर चलदिये। पर-न्तु वो अपने स्थान को न आसके।

मायावी औरंगजेवने उनके ऊपर पहरा रखने का पहलेसे ही बंदोबस्त कर रक्खाथा। चतुर शिवाजी अपने को फंसता हुआ जानकर भी विलकुल न घबडाये। उन्होंने देशकी जलवायु को दूषित बताकर अपनी सेना को अपने स्थान को लौटा देने की आज्ञा मांगी बादशाह ने अपने कार्य में और भी अधिक सुविधा सोचकर सेना को आज्ञा देदी। इधर शिवाजी रोग का बहाना करके पडरहे दो चार दिन बाद कुछ २ आराम है ऐसा प्रसिद्ध कर बहुत से लड्डू पेडे मंगा२ कर फकीरों को बांटने लगे अतएव सहस्रों बोरे मिठाई संकल्प हो २ कर शिवाजी के स्थान से बाहर जाने लगी सब पहरेदारों को पूर्ण विश्वास होगया कि केवल

मिठाई बाहर जायाकरतीहै समय पाकर शिवाजी अपने पुत्र के साथ दो वोरियों में बैठकर इस स्थान के बाहर निकलगये बाहर तो पहलेही से घोडा तयार था शिवाजी सपुत्र एकही घोडेपर सवार होकर मथुरा आये यहां अपने एक विश्वासी मित्र के पास शम्भाजी को रखकर स्वयं सन्यास वेशमें विचरते २ निज स्थान पर जा पहुंचे। वीजापुरके नवाव को और गोलकुंडा के राजाको परास्तकर उन से कर निश्चित कर लिया। इसके अनन्तर युद्धों से विश्राम पाकर राज्य का सुप्रवन्ध किया सब काम विद्वान् ब्राह्मणों को सोंपे जिस्में प्रजा प्रसन्न रहे। शिवाजी अपनी कुल सेना को अपने ही खजाने से तनख्वाह देते थे कभी किसी प्रकार अपनी प्रजा को असन्तुष्ट नहीं रखतेथे "प्रजा के प्रसन्न रहने में ही राज अटल रहताहै" इस मन्त्र को शिवाजी अच्छी तरह जानते थे। भारत के प्राचीन नियमानुसार शिवाजी शरदऋतु में ही दुष्टसंहारणी भवानी का पूजन कर दिग्विजय करने को यात्रा किया करते थे वो शत्रुओं की सम्पात्ति अवश्य लूटते थे परन्तु गौ, ब्राह्मण, स्त्री, किसान, इन पर कभी हाथ नहीं डालते थे वस इस प्रकार बढते २ शिवाजी एक प्रतापशाली महाराजा प्रसिद्ध हुए।

शिवाजी की ऐसी उन्नति देख औरंगजेबने प्रकाशरूप से बड़े ठाट वाट के साथ संग्राम शुरू किया परन्तु शिवाजी जैसे दृढप्रतिज्ञ धर्मवीर कब हटनेवाले थे इस बार भी शिवाजी की विजयपताका कई वादशाही किलों पर फर २ फहराने लगी इस के अनन्तर शिवाजीने पन्द्रह हजार सेना लेकर फिर सूरत को लूटा भला किसकी सामर्थ्य थी जोकि तेजस्वी स्व-तंत्रताके सच्चे उपासक शिवाजी के सामने पडसके शिवाजी

सूरत को लूटकर लौटे जारहे थे उससमय दाऊदखां नामक सेना-पतिने पांच हजार अश्वारोही सेना के साथ शिवाजी का पीछा किया । शिवाजीने इसे तृणवत् समझकर खूबही तंग किया और फिर छुडवा दिया शिवाजी के इस अपौरुषेय अमित पराक्रम से चिन्तित हो औरंगजेबने चालीस हजार सेना लेकर मुहब्बतखां को शिवाजी के ऊपर चढाकर भेजा परन्तु रणवीर शिवाजीनें इस की कुछ भी चिन्ता न की उन्होंने मेरुपन्त और प्रतापराव इन दो सेनापतियों को मुगल सेना के साथ युद्ध करने का हुक्म देदिया । इस युद्ध में भी मुगल सेना की पूर्णतया हारहुई बहुत से सैनिक मारे गये बाईस मुगल सरदार मारे गये और कई प्रधान सर्दार कैद किये गये । दो बार मरहटों का और मुगलों का घोर युद्ध हुआ परन्तु दोनों बार शिवाजी की ही जयहुई चारों ओर शिवाजी की यशोपताका दृष्ट पडने लगी संसार की समस्त शक्तियां शिवाजी को महापराक्रमी नरपुंगव कहकर सम्बोधन करने लगीं उक्त युद्ध में शिवाजीने जिन मुगल सर्दारों को कैद किया था उन की पूर्णतया रक्षा की और आरोग्य होनेपर बडे सन्मान के साथ विदा कर दिया भारतवीर शिवाजी की ये उदारता चिरकाल तक इतिहासको सुशोभित रक्खेगी । प्रियपाठक ! आपको स्मरण होगा कि शिवा-जी अपने नाम से सुशोभित मुद्रा तो पहले ही चला चुके थे अव शास्त्राज्ञानुसार काशी निवासी गागा भट्ट नामक ब्राह्मण के आचार्यत्वमें शाके १५९६ की ज्येष्ट शुक्ला त्रयोदशी के दिवस बढे समारोह और जयध्वनि के साथ रायगढ में महाराज शि-वाजीने स्वराज्य के सिंहासन को सुशोभित किया ।

राज्याभिषेक के वक्त अनेक स्थानों से राजदूत आए थे

उस समय एक अङ्गरेज दूत भी "अङ्गरेज कम्पनी" का प्रतिनिधि बनकर बम्बई से आया था और प्रतापी शिवाजी से सन्धि की थी। इस प्रकार शिवाजी सच्चे राजा बनकर बड़ी योग्यतापूर्वक राज काज करने लगे इसके अनन्तर शिवाजी को और भी कई युद्ध करने पड़े परन्तु बराबर उनकी जयही होती रही एकसमय दिलेरखां ने बड़े जोर शोर से बीजापुर के नवाब के ऊपर चढ़ाई की उस समय नवाब ने शिवाजी से सहायता मांगी शिवाजी ने सहायता दी जिस्से कि दिलेरखां को जान बचाकर भागना पड़ा शिवाजी की इस उदारता से उऋण होने के लिये नवाब ने बहुतसा देश शिवाजी को समर्पण किया ॥

इसी तरह अनेक प्रशंसनीय तेजस्विता के कार्य करते २ शिवाजी की जीवनयात्रा का अन्तिम दिवस पास आ पहुंचा प्रथम उनका गला फूला तो वंह रायगढ़ चले गये वहां पहुंचते ही बड़ा घोर ज्वर आगया इस की वेदना को भोगते हुए सांतवें दिन सन् १६८० की ५ अपरेल को त्रेपन वर्ष की अवस्था में शिवाजी ने प्राण परित्याग कर महाराष्ट्रों को ही नहीं किन्तु समस्त भारत को अथाह शोकसागर में निमग्न किया। सहृदय पाठको ! आज वह समय नहीं है वह शिवाजी नहीं है परन्तु उन के दृढ़ कर्त्तव्य, अलौकिक देशभक्ति, अगाध प्रजा प्रेम, तथा कूटराज नीति की कीर्ति आजतक भी प्रत्येक विचार वान् इतिहास प्रेमी सज्जनों की हृदय कन्दराओंमें भले प्रकार गूंज रही है। शिवाजी हिन्दू जाति के उद्धार करने वाले वीर पुरुष थे।

जो जाति सैंकड़ों वर्षों के अमानुषी जुल्मों से नष्टप्राय हो चुकी थी स्वाधीनता को नष्टकर दूसरों की चरणसेवा को ही मुख्य कर्तव्य समझ बैठी थी उस जाति को शिवाजी ने अपने

सद्उपदेश, और आत्मावलम्ब, के मंत्र सें दीक्षित कर फिर से स्वाधीनता के फलका आस्वादन कराया था कोन कह सक्ता है कि किस दिन क्यासे क्या होगा ऐसे चरित्रों को देख कर ही तो महात्मा तुलसीदासजी का वह वचन याद आताहै॥ " मूंकहोइ बाचाल पंगु चढ़े गिरवर गहन " शिवाजी जैसे वीर पुरुष साधारण पुरुष नहीं थे ऐसे २ पुरुष जगन्नियन्ता परमात्मा की इच्छा से जगत् को शिक्षा देने के लिये ही उत्पन्न हुआ करते हैं। जिस देशका सौभाग्य सूर्य जव उदय होने को होता है उसी समय ऐसे महात्मा उत्पन्न हुआ करते हैं शिवाजी का प्रत्येक कार्य शिक्षापूर्ण है उनकी बात२ से शिक्षा टपक रही है शिवाजी भारत के अनन्य पुरुषों में से एक हैं उनका चरित्र सर्वथा शिरो वन्द्य है ॥

—०—

॥ ओऽम् हरिम्बन्दे ॥

॥ महात्मा गोविन्दसिंह ॥

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु बयस्तेजसो हेतुः ॥

संसार में ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे एक दिन न एक दिन मृत्यु के मुख में न जाना पड़े? कौन ऐसा है जो इन सांसारिक क्षणिक सुखों को ही सर्वदा भोगता रहै? यथार्थ में सबको एक ही मार्ग से जाना पड़ता है। वह पुरुष ही धन्य हैं जिन्हों ने अपने धर्म से पश्चात्पद नहीं दिया है शास्त्रान्तरों में कहा है

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चले जीवित मन्दिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि जिसने अपने धर्म की यात्रा को पूरी तौर पर पूरा नहीं किया है उसने संसार में जन्म लेकर नाहक मनुष्य जाति को लांछनित किया है। जो मनुष्यत्व का अभिमान रखते हैं जो धर्म का अभिमान रखते हैं वह महात्मा गोविन्दसिंह के जीवन चरित्र को अच्छे प्रकार मनन करें कि उन्हों ने कहां तक धर्मरक्षा की थी। पाठकगण! ऐसे महात्मा के स्मरण से, चरित पाठसे मनुष्य का चित्त शुद्ध होता है अज्ञान नष्ट होकर यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है अतएव भारत वासी मात्र को तो गुरु गोविन्दसिंह का जीवनवृत्त एक अवश्य जानने योग्य विषय है।

गुरु गोविन्दसिंह नानक संस्थापित सिक्खजाति के पुरुष रत्न थे। गोविन्द सिंह का जीवन वृत्त और सिक्ख जाति की उन्नति का घनिष्ट सम्बन्ध है। गोविन्द सिंह ने ही सिक्खों को एकता के एक सूत्र में बांधा था गोविन्द सिंह ने ही अपनी जाति

को पतितावस्था में देख अपने महामन्त्र से दीक्षित कर हिन्दू मुसल्मानों को एक भूमि में खड़ेकर एक दूसरे से भ्रातृभाव उत्पन्न करा जातीयता का प्रत्यक्ष फल दिखाकर एक महाशक्ति को चकाचौंध दिलाया था। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म सम्वत् १७२३ पौष कृष्णा त्रयोदशी को पटना नगर में हुआ था पांच वर्ष तक आप बड़े लाड़ चाव से पाले गये "होनहार विरवान के होत चीकने पात" इस कहावत के अनुसार ये अपनी वालावस्था में भी राजाओं की लड़ाई तथा राजदर्वार आदि के खेलही अधिक खेला करते थे। इससे स्पष्ट मालूम होता था कि ये एक असाधारण नरपुंगव होंगे। इनका विवाह संवत् १७३० में हरजसराय नामक खत्री की कन्या से हुआ था हमारे चरित्र नायक के पिता तेगवहादुर अपने शत्रु रामराय के मायाजाल में पड़कर दिल्लीश्वर औरंगजेव के क्रोध भाजन हुए अतः दिल्ली की भारी मुगल सेना ने इनपर आक्रमण किया तेगवाहादुर हारगये और बन्दी होकर दिल्ली जाना पड़ा। वहांपर इनको जो दंडदिया उसे पाठकगण आगे जानेंगे। दिल्ली जाने से प्रथम तेगवहादुर ने गोविन्द सिंहजी से कहाथा हे पुत्र! शत्रु मुझे दिल्ली ले जांयगे यदि वह मुझे प्राणदंड देंतो तू मेरी मृत्युसे अधीर हो "किं कर्तव्य विमूढ न होना" देख इस गद्दी का भार अब से तेरे ऊपर ही निर्भर है। होसके तो समय पाकर मेरी हत्या का वदला अवश्य लेना। गोविन्दसिंह ने पिता की अन्तिम आज्ञा परिपालन की दृढप्रतिज्ञा की। तेगवहादुर प्रसन्न हो दिल्ली चलेगये दिल्ली पहुंचनेपर वादशाह ने अनेक वाग्जाल फैलाकर यवनधर्म स्वीकार करने को कहा परन्तु वीरवर तेगवहादुर ने गर्ज कर उत्तर दिया कि रे मूढ!

कहीं प्राणभय से धर्म छोडा जाता है ध्यान रखना कि मेरे कंठ में बंधे हुए कागद पर जल्लाद की तलवार का स्पर्श न हो यह कह कर जल्लाद के आगे ग्रीवा झुकादी फिर क्या था देखते२ धर्मवीर महात्मा तेगवहादुर का शीस भूमिपर क्रीडा करने लगा अद्भुत आत्मत्याग से बादशाह विस्मित और भयभीत हो सब से पहले उस कागद को देखने लगा इसमें लिखा था "सिर दिया सार न दिया,, ठीक भी है इस असार संसार में कीर्ति ही शेष रहजाती है। पिताजी का शरीरान्त सुन गोविन्दसिंह को शोक तो हुआ परन्तु वह कर्तव्य को न भूले। उन्होंने अपने शिष्यों को सम्बोधन कर कहा क्या ऐसा कोई है जो पिताजी के शरीर को लाकर दे यह सुन एक शिष्य प्रणाम कर चल दिया और शीघ्रही मृतशरीर को लाकर सामने आ रक्खा। गोविन्द सिंह ने शवकृत्य से निवृत्त होकर सब के समीप सिंहनाद से प्रतिज्ञा की। यदि मैं तेगवहादुर के वीर्य से उत्पन्न हुआ हूं यदि मुझ में ईश्वरदत्त शक्ति है तो मैं इन अत्याचारी यवनों का कुलच्छेद कर यवनेश्वर औरंगजेव को इस खड्ग का शिकार वनाकर पिता की हत्या का बदला अवश्य लूंगा और अपने देश को इन म्लेच्छों की पराधीनता से निश्चय उद्धार करूंगा।

प्रिय पाठको! पन्द्रह वर्ष के नव युवक गोविन्द सिंह के वाक्यों की ओर ध्यान दो कि इस सुकुमारता में कहां तक भयानकता थी इस बुद्धि की कोमलता में कहां तक गंभीरता थी। वस गोविन्द सिंह उक्त प्रतिज्ञाकर संसार के समस्त भोग विलासों को तिलाञ्जलि देकर पर्वत की दुर्गम भयंकर गुफामें मातृभूमि के हित साधनार्थ आत्मसंयम और आत्मत्याग की शिक्षा के लिये योगासन लगाकर आराध्यदेव की आराधना में तन्मनस्क हुए।

कुछ दिन बाद गोविन्दसिंह ने अपने शिष्य समूह को एकत्रित करना शुरू किया और प्रकाश रूपसे युद्धसामिग्री इकट्ठी करने लगे। वह सर्वदा अपने शिष्यों को यही उपदेश दिया करते थे परमात्मा शुद्ध और सर्वशक्तिमान् है उसकी कृपासे मनुष्यजाति कठिन से कठिन कार्य को सिद्ध करसक्ती है। इसके सिवाय वह अपने को ईश्वर का भेजा हुआ प्रियदास वताया करते थे इस लिये सिक्खों की उनपर बड़ी अटल श्रद्धा थी। इस गद्दी के अनेक शिष्य गुरु गोबिन्द सिंह के दर्शन को आते थे और हजारों रुपये के सामान भेट करते थे इस लिये गुरु गोविन्द सिंह को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती थी आपको आसाम के राजा ने एक ऐसा सीखा हुआ हाथी भेट किया था जो नाना प्रकारके आश्चर्यजनक काम करता था।

विलासपुर का राजा भीमचन्द इनके दर्शन को आया तो इस हाथी पर मोहित होगया और गोविन्द सिंह से इस हाथी को मांगने लगा और कहने लगा कि आप एक लाख अशर्फी लेलीजिये इस हाथी को मुझे देदीजिये गुरु गोविन्द सिंह ने मना कर दिया। इसके कुछ दिन वाद भीमचन्द ने छल से पुत्र के विवाह में हाथी मांगा चतुर गोविन्द सिंह जी ने इसकी माया जानकर तब भी निषेध करादिया। वस अब तो यह आग वबूला होकर अपनी सेना के साथ गोविन्द सिंह पर चढ़ आया परन्तु वीर सिक्खों ने थोड़े ही देर में इसकी सेना को तहसनहस कर डाला और यह प्राण बचाकर भाग गया। कुछ ही दिन के वाद भीमचन्द के पुत्र का विवाह श्रीनगर की राजकन्या से निश्चित हुआ। श्रीनगर का राजा गोविन्द सिंह का परम मित्र था इस कारण गुरु गोविन्द सिंह ने पांचसौ सवारों के

साथ मंत्री नंदचंद जी के द्वारा मित्र के कन्यादान में टीका भेजा जब भीमचन्द को मालुम हुआ कि ये टीका गोविन्द सिंह का है तो उसने कहा कि यदि आप इसके टीके को स्वीकार करेंगे तो मैं लड़की का डोला नहीं लेजाऊंगा विवश राजा ने टीका फेर लेजाने को कहा यह बात नंदचंद से न सही गई उन्हों ने तुरंत हुक्म दिया कि व्याह का सब साज सामान लूट लाटलो फिर क्या विलम्ब था उद्धत सिक्खों ने लूट पीट कर रस्ताली । यह बात भीम चन्द और श्री नगर के राजा दोनों को ही बुरी लगी भीमचन्द ने साथ के सब राजाओं को संगले तथा १० हजार सेना को साथले गुरु गोविन्द सिंह पर चढ़ाई करदी गोबिन्द सिंहजी भी अनुमान दो ढाई हजार सेना को लेकर आ डटे जमुना और गिरी नदी के किनारे खूबही घनघोर संग्राम हुआ युद्धहो ही रहा था कि गुरू साहिब के एक हजार सैनिक विद्रोही हो चले परन्तु ईश्वर की कृपा से उसी समय बुद्धूशाह अपने मित्र गुरू साहब की सहायतार्थ दोहजार सेना के साथ आ पहुंचा' फिर तो उत्साह का समुद्र उमड़ पड़ा सिक्ख सेना बड़े जोर शोर से शत्रुओं को पृथ्वी पर शयन कराने लगी स्वयं गोविन्द सिंह ने बड़े २ सरदारों को यमलोक पहुंचाया शत्रुओं का तलवा उखड़ गया सेना भाग गयी हमारे चरित्र नायक की विजय पताका फहराने लगी । इस विजय से गोविन्द सिंह का उत्साह और भी बढ़गया इसके अनन्तर गोविन्द सिंह अपनी माता की आज्ञानुसार पांवटा ग्रामको छोड़ कर आनन्दपुर नामक ग्राम में जा बसे गोविन्द सिंहजी ने लोहगढ़, फतहगढ़, फूलगढ़, और आनन्दगढ नामक बड़े २ किले बनाए और पूरा ठाट बाट राजाओं का सा ही कर लिया ।

यहीं पर इन्होंने सुन्दरी नामकी सिक्ख खत्री कन्या से दूसरा विवाह करलिया।

कुछ समय व्यतीत होनेपर भीमचन्द ने भयभीत हो गुरु गोविंद से सन्धि करली। गोविंद सिंहने इस प्रकार अपने साधनों में सफलता प्राप्तकी। परन्तु उनका प्रधान उद्देश्य अभीतक सफल नहीं हुआ था। वह प्रतिक्षण इसी विचार में निमग्न रहते थे कि इन विधर्मी अन्यायी मुगलों से अविभूत भारत का उद्धार करने में विलम्ब न होना चाहिये।

परमात्मा की माया से उनके उद्देश्य का समय पास आया। सम्राट् औरंगजेब ने उद्धत पहाड़ी राजाओं को दमन करने के लिये तथा राज्य कर वसूल करने के लिये चार अफसर और कुछ सेना को भेजा। पहाड़ी राजाओं ने औरंगजेबके प्रताप से भयभीत हो गुरू गोविंदसिंहजी को पांच हजार रुपे भेट किये और अपनी रक्षार्थ सेना मांगी। गोबिंद सिंह ने पांच सौ घुड़सवार सिक्ख इनके साथ कर दिये। गोविंद सिंह के देशोद्धारकमन्त्र से सुशिक्षित मुगलों के खूनके प्यासे इन सिक्ख वीरों ने बड़ी वीरता से मुगलों का काटना शुरूकिया एक २ सिक्ख पांच पांच मुगलों को भारी पड़ता था जिधर को एक सिक्ख वीर अपनी कृपाण को बांकी करता था उधर ही मुगलों के रुण्ड ही रुण्ड दीखपड़ते थे। ठीक भी है पेटके लोभ से नोकरी करनेवाले सिपाहियों की क्या सामर्थ्य थी जो स्वन्त्रताप्रेमी सिक्ख वीरों का सामना कर सके अन्त को मुगल सेना हारकर भाग खड़ी हुई। ऐसे समयमें पहाड़ी राजाओं का एक देशद्रोही अफसर मुगलों से मेल खाकर उन्हें फिर लौटा लाया। इस बात पर गुरु गोविंद सिंहको भी क्रो-

ध आगया वह स्वयं अश्वारूढ होकर संग्राम में जा डटे और अनेक मुगल सरदारों को यमलोक पहुंचाया अपने स्वामीके सामीप्य में सिक्ख लोग बड़े ही उत्साहपूर्वक (वाह गुरू की फत्तह) आदि शब्दों से गगन मंडल को कम्पायमान करते हुए मुगलों को काटने लगे। अन्ततो गत्वा सिक्खों की ही जय हुई गुरु गोविन्द सिंह विजय श्री से सुशोभित हो अपने स्थान को लौट आये। इसके बाद भी और कई युद्धों में गुरु गोविन्द सिंह की ही यज हुई परन्तु अन्त को लड़ाई में औरंगजेव से भीमचंद तथा पहाड़ी राजाओं के मिलजाने से औरंगजेव की सेना की अत्यन्त अधिकता से और इनको एक किले में ही घेर लेने आदि कतिपय विशेष कारणों से गुरु गोविन्द सिंह की हार हुई परन्तु वह बड़ी चतुराई के साथ किले से निकल गये और शत्रु का मनोरथ पूर्ण न हुआ। हां इस झगड़े में हमारे चरित्र नायक गोविन्द सिंह की माता का डोला और उनके दो पुत्र सरहिन्द के नबाब के हाथ अवश्य लगे जिस में गोविन्दसिंह की साध्वी माता ने तो आत्मघात कर विधर्मियों से पीछा छुड़ाकर स्वर्गारोहण किया बचे दो पुत्र उनको नवाव-ने मुसल्मान बनाना चाहा उन दोनों को दरवार में खड़ेकर नवाव ने पूछा अरे लड़को तुम मुसल्मान होने को राजी हो बड़े ने कहा धिक्कार है मुसल्मानी धर्मपर, छोटे बच्चे से पूछा उसने भी वड़े भाई की हां में हां मिलाई, अच्छा तो यदि तुम को छोड़ दिया जाय तो क्या करोगे ? दोनों लड़कों ने उत्तर दिया कि हम छूटकर अपने सिक्खों को एकत्रित करेंगे और शस्त्रों से शत्रुसंहार करेंगे इस पर फिर नवाव बोला अगर हारगये तो क्या करोगे ? फिर दोनों बालकों ने वड़ी साव-

धानी के साथ उत्तर दिया कि फिर सेना इकट्ठी करेंगे और आप लोगों को मार काट कर बदला लेंगे या लड़ते २ अपने ही प्राण देदेंगे । यह सुन नबाब ने क्रोधित होकर कहा बस बक २ मत करो अरे है कोई इन दोनों को दीवाल में चुनदो, वहां देर क्या थी इनको बीच में खड़ाकर चारों ओर से कमर बराबर दीवार चुनदीगई । इतने पर फिर उनसे कहा अरे बेवकूफो! क्यों नाहक जान देते हो अब भी मुसल्मान होना कबूल करलो । इन दोनों ने बिलकुल व्याकुलता न दिखाई और गम्भीरता पूर्वक फिर वही उत्तरदिया । अरे मूर्खो! कहीं क्षण भंगुर शरीर के लोभ में धर्म का भी नाश किया जाता है अरे नीच! गुरु गोविन्दसिंह के लडके भला प्राण देने से डर सक्ते हैं हमारी प्रतिज्ञा अटल है । यह सुन अन्यायी म्लेच्छ ने दीवार चिनने की आज्ञा देदी और वे दोनों बालक अपने आराध्यदेव अकाल पुरुष और गुरूसाहब के नाम स्मरण करने में तत्पर हुए देखते २ पैर से चोटी तक दीवार खडी होगई और उन दोनों की जीवन यात्रा समाप्त हुई । अहा ! धन्य धर्म प्रेम, धन्य आत्मावलम्ब, प्रिय पाठक वृन्द !

देखा क्या यह वोही भारतवर्ष है ? जहां के छोटे २ बच्चों में ऐसी धर्मप्रीति, ऐसा आत्मत्याग और ऐसी अटल प्रतिज्ञा आदि गुण मौजूद थे । क्या हम उसी भारतमाता की सन्तान हैं ? हाय २ प्राण देने को तो तिखाल में रखदो हम से तो अपने देश धर्म की भलाई करने के लिये स्वार्थत्याग और सांसारिक विलासता का भी परित्याग नहीं किया जाता । अस्तु, इधर तो इनकी माता तथा दो पुत्रों की यह दशा हुई उधर गुरु गोविन्द वलवान् शत्रु से छिपे २ कुछ काल व्यतीत कर रायकोट में

एक धनिक के यहां ठहरे वहीं इनको माता और पुत्रोंका उक्त राक्षसी हत्याकांड सुनने में आया इस पर गुरुसाहब ने क्रुद्धहोकर शापदिया कि रे नीच मुगलो ! थोडे ही समय में तुम्हारी बादशाही खण्ड २ होजायगी इसके बाद धीरे २ सिक्ख लोग फिर गुरुसाहब के पास इकठ्ठे होने लगे जब सरहिन्द के नवाब ने सुना कि सिक्खों का फिर जोर होने लगा है तो वह अपनी सेना लेकर फिर गुरु साहब के ऊपर आ टूटा परन्तु परमात्मा की कृपा से इस बार सिक्खों की ही जय हुई बहुत सी मुगल सेना मारी गई और बची हुई भाग गई। इस प्रकार गोविन्द-सिंह जी की अटल प्रतिज्ञासे प्रसन्न हो औरंगजेब ने गुरुसाहब से मिलना चाहा परन्तु गोविन्दसिंहजी ने अपने उन दो पुत्रों के साथ अन्यायी को दंड देने का स्मरण दिलाकर औरंगजेब की प्रार्थना को तिरस्कृत कर दिया। ऐसे २ अनेक प्रशंसनीय वीरता तथा तेजस्विता के कार्य करते २ आपका अन्त समय समीप आ-गया। दो पठानज्ञातिके लडके कपटसे गुरु गोविन्दसिंह के शिष्य होगये थे इन दोनों के पिता को गुरुसाहब ने रणभूमि में मारा था इसीलिये इन दोनोंको गुरुसाहब को मारने की ही फिकिर रहती थी अतएव एक दिन रात्रिको सोते हुए गुरुसाहब के पेट में इन्होंने कटारी घूंस दी इन्होंने कटारी चलाईही थी कि गुरुगोविंद सिंह ने पास रक्खी हुई तलवार उठाकर एकही हाथ में इन दोनों के सिर धड़ से अलहदे कर डाले। गुरुसाहब के यह घाव यद्यपि बहुत गहरा हुआ था परन्तु औषधि करने पर घाव आराम होने लगगया। बस इन्ही दिनों दिल्लीपति औरं-गजेबने दो बढिया बाण गुरुसाहब को उपहार रूपमें भेजेथे लोग देखकर आश्चर्य करने लगे और कहने लगे कि भाई बाण तो

बहुत उत्तम हैं पर इस ज़माने में इनके चलानेवाले कहां से आवें यह सुन वीरशिरोमणि गुरुगोविन्दसे न रहा गया बार २ मना करते २ भी उन्होंने एक तीर लेकर धनुष पर चढाकर छोड़ दिया जो कई कोस पर जाकर गिरा इसी कठिन परिश्रम से उनके घाव के कच्चे टांके टूटगये और खून बहने लगा जो की अनेक उपाय करने पर भी न थमा। यह देख गुरूसाहबने सब शिष्यों को बुलाकर कहा मेरे प्यारे वीर सिक्खो मेरा चलने का समय आगया तुम अपने कर्त्तव्य से न हटना और अब से ग्रन्थ साहब को अपना गुरू मानकर सब कार्य करते रहना यह कह कर उन्होंने वीर वाना धारण किया तलवार हाथ में ली और अकाल पुरुष को स्मरण करते हुए वीरासनसे बैठकर कार्तिक शुक्ला पंचमी सम्बत् १७६५ को प्राण परित्याग किये। गोविन्द सिंह ने थोड़ी अवस्थामें और थोड़े हीसे समयमें सिक्ख ज्ञातिमें वह जीवनी शक्ति भरदी थी कि जिस्से निर्जीव निष्क्रिय भारत में सिक्ख ज्ञाति आजतक भी अपने बीरत्व विशेषण से पुकारी जाती है यद्यपि गोविन्द सिंह का विनाशी शरीर इस समय देख नहीं पड़ता परंतु उनकी विमल कीर्ति चारों ओर से गूंजती मालूम देती है जब तक पृथ्वी अपने अचला नाम से पुकारी जायगी पर्वत जब तक अचल रहेंगे सूर्य चन्द्र जबतक यथा समय उदय अस्त होंगे तब तक गुरू गोविन्द सिंहका नाम जातीय इतिहास में रत्नजटित सुवर्ण मुद्रा की भांति देदीप्यमान रहेगा ॥

———०———

॥ ओऽम् हरिम्बन्दे ॥

॥ महारानी लक्ष्मी बाई ॥

स जीवति यशो यस्य कीर्तिर्यस्य स जीवति ।
अयशोऽकीर्ति संयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः ॥

भारतवर्ष का पठित व अपठित ऐसा कौन मनुष्य होगा कि जिसने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम न सुना हो यह अपने असाधारण शौर्य्यादि गुणों से अत्यन्त प्रसिद्धि पा चुकी हैं । जिस उन्नीसवीं शताब्दी में हिमालय से कुमारिका तक और सिन्धुसे ब्रह्मदेश तक विशाल भूभाग वृटिश गवर्नमेन्ट की विजयिनी शक्ति से सुशासित हो रहाथा । जिस राज्य की शक्ति महाराज भोज व विक्रम की शक्ति की समानता को पहुंचा चाहती थी ऐसी बड़ी शक्ति के विरुद्ध खंड़े होकर स्वाधीनताके गौरवरक्षार्थ एकाकिनी लक्ष्मीबाई ने क्यों उद्योग किया ? यहां इसी सच्ची कहानी को सुनाया जायगा। लक्ष्मीबाई का जन्म काशीपुरी में १९ नवम्बर सन् १८३५ ईस्वी को मोरोपन्त नामक महाराष्ट्र ब्राह्मण के घर हुआ था लक्ष्मीबाई की माताका नाम भागीरथी बाई था जन्म के समय इनका नाम मनुबाई रक्खा गया परन्तु पीछे इनकी प्रसिद्धि लक्ष्मीबाई नामसे हुई जोकि पाठकों को आगे चलकर निश्चय होगा । पहले मोरोपन्त काशीपुरी में चिमाजी आप्पाके यहां ५० रु० मासिक वेतन पर रहते थे । जब कि आप्पासाहब का देहान्त हो गया । तो मोरोपन्त जी अपनी पत्नी और कन्या को साथ लेकर पेशवा बाजीराव के पास त्रिठूर (जिला कानपुर)

में निवास करने लगे यहीं पर हमारी चरित्रनायिका मनुबाई (लक्ष्मीबाई) का बालपन पेशवा के दत्तक पुत्र (गोदलिये हुए बेटा) नाना साहब के साथ खेलने कूदने में व्यतीत हुआ- मनुबाई के स्वरूप और तेज को देख कर बाजीराव और उन के इष्ट मित्र बड़े प्रसन्न होतेथे। एक ज्योतिषी ने मनुबाई के जन्मपत्र को देखकर कहाथा कि यह तो बड़ी प्रसिद्ध महारानी होगी। ज्योतिषी जी का फलादेश भी ठीक ही हुआ।

बुन्देलखंड के पर्वतीय विभागमें झांसी नामक राज्य है झांसी नगर प्राकृतिकरमणीय स्थान में स्थित है इसकी दोनों बाहुओं पर ऊंचे ९ पर्वत सुशोभित है पर्वतों की तलहटी सुन्दर हरे २ झालरेदार वृक्ष और पुष्प लताओं से सुसज्जित देख पड़ती है इस राज्य का कुल परिमाण १,५६७ वर्ग मील है॥

प्रथम झांसीराज्य महाराष्ट्रकुलभूषण पेशवा के अधिकार में था अनन्तर सन् १८१७ में झांसीराज्य का सम्बन्ध वृटिश गवर्नमेन्ट के साथ होगया। गंगाधर राव झांसी के सबसे अन्तिम राजा थे वह सन् १८३८ में झांसी के राज्य सिंहासन पर आरूढ हुए थे। प्रथम महारानी के शरीरान्त होनेपर इन महाराज का बिवाह हमारी चरित्रनायिका मनुबाई के साथ हुआ। मनुबाई के राजधानी में आनेपर इन की उदारता बुद्धिमत्ता और सुन्दरता आदि सद्गुणोंपर मोहित होकर नगरवासी प्रजागण इन को "लक्ष्मीमाता" कहने लगे गये। बस इसी समय से इनका नाम लक्ष्मीबाई प्रसिद्ध होगया। महाराज गंगाधर राव अपने राज्य का अच्छा प्रबन्ध रखते थे इनके पास चार तोपखाने, ५००० पैदल और ५००० सवार थे गंगाधर राव जब काशी प्रयाग आदि की यात्रा को निकले थे तो

गवर्नमेन्ट ने इनका अच्छा आदर सत्कार किया था। यात्रा से लौटनेपर सन् १८५१ ईस्वी में लक्ष्मीबाई के पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु वह तीन महीने का होकर ही मरगया। गंगाधरराव को इसके मरने का वडा असह्य दुःख हुआ तभी से वह रोगी रहने लगे रोग यहां तक बढ़ा कि वह अपने जीवन की आशा छोड बैठे। अत एव उन्होंने अपने घराने से एक लडका आनन्द रावदत्त विधि से गोदलिया और उसका नाम दामोदरराव रक्खा उसी समय दर्बार भी कराया गया जिस में बुंदेलखण्ड के असिस्टेन्ट पोलिटिकिल एजण्ट मेजर यालिस और कैपटिन मार्टिन भी मौजूद थे। उसी समय महाराज ने अपने दीवान से इस भाव का प्रार्थना पत्र लिखाया। में इस समय बहुत ही रोगग्रस्त हूं एक शक्तिशाली गवर्नमेन्ट का विशेष अनुग्रह होने पर भी इतने दिनों बाद मेरे पूर्व पुरुषों का नाम लुप्त हुआ जाता है ऐसा विचार में बहुत उद्विग्न हो रहा था। इसलिये वृटिश गवर्नमेन्ट के साथ जो मेरी सन्धि हुई है उसकी दूसरी धारा के अनुसार मैंने आनन्दराव नामक एक समीप सम्बन्धी ५ वर्ष के बालक को दत्तक रूपसें ग्रहण कर लिया है। यदि मैं ईश्वर की कृपा और गवर्नमेन्ट के अनुग्रह से रोग मुक्त होगया और तदनन्तर मेरे कोई पुत्र होगया तो मैं यथाविधि कार्य करूंगा यदि में जीवित न रहा तो मैं विश्वास के साथ अनुरोध करता हूं कि वृटिश गवर्नमेन्ट इस बालक पर कृपा करके इस बालक की माता और मेरी विधवा स्त्री को जीवन भर सब विषयमें स्वत्वाधिकारिणी बनावेगी और उनके साथ कभी भी कोई अनुचित व्यवहार न दिखाया जायगा ॥

उक्त प्रार्थना पत्रको महाराजने मेजर यालिस के सुपुर्द कि-

था। उन्होंने प्रार्थना पत्र को ग्रहण कर महाराज की इच्छा पूर्ण होने की सान्त्वना प्रदान की। इसके दो दिन बाद महाराज गंगाधरराव का ता. २१ नवम्बर सन् १८५३ को प्राणान्त होगया। गंगाधरराव की अन्तिम प्रार्थना की ओर लेशमात्र भी दृष्टि नहीं दी गई किन्तु राजा रणजीतसिंह के राज्य में बृटिशपताका फहराने वाले तथा सितारा राज्य में बृटिशाधिपत्य जमाने वाले लार्ड डालहौसी की इच्छानुसार झांसी राज्य बृटिश इंडिया में मिलादिया गया। तेजस्विनी वीरनारी लक्ष्मीबाई ने यथाशक्ति अपने राज्य के बचाने के लिये उद्योग किया। उन्होंने अपने पतिके साथ तय हुए सन्धि-नियम और बन्धुता का परिचय तथा दत्तक पुत्र लेने के अधिकार को भली भांति दिखाकर न्याय की प्रार्थना की परन्तु उनकी यह सब चेष्टाभी बिलकुल निष्फल हुई। और झांसीराज्य सदा के लिये अंगरेजी राज्य में मिला दिया गया। हाय अब मेरा राज्य चला गया ऐसा विचार कर महारानी के हृदय पर भारी चोट लगी सही परन्तु अगाध धैर्य ने जिनके चित्तको अटल बना रक्खा है, सत्य प्रतिज्ञाने जिनके स्वभावको सर्वोच्चस्थान दे रक्खा है तथा दृढ निश्चयने जिनके चित्तको सब प्रकार के विघ्न और आपत्ति के सहने योग्य बना दिया है ऐसे स्त्री वा पुरुष विपत्ति आ पड़ने पर धैर्य को कदापि परित्याग नहीं करते इसी प्रकार लक्ष्मीबाई भी एकाएक भाग्य परिवर्तन होजाने पर भी दृढता से विचलित नहीं हुई। बृटिश एजेन्ट मेजरयलिस से मिलतेसमय महारानीने चित्तके दुखःमय भावको प्रकट करनेवाले उच्चस्वर से कहा "क्या मेरी झांसी न देंगे" मेजर यलिस इस वीरनारी के धैर्य और दृढता को देख दंग रह गये ॥

राज्य छिनजाने पर लक्ष्मीबाई को गवर्नमेन्ट से ५०००) मासिक मिलने की आज्ञा हुई इस दशा में रानी साहिब अपने महलमें साधारण स्थितिमें दिन व्यतीत करने लगीं। आपकी राज्य चलेजाने के अनन्तर की दिनचर्या इस प्रकार थी कि वे प्रातःकाल उठकर शौच स्नानादि नित्य कर्म से निवृत्तहो ईश्वर स्मरण करती थीं तदनन्तर अपने महल के चौकमें घोडे फेरतीं। फिर ग्यारह बजे दुवारा स्नान कर भोजन करतीं और ३ बजेतक ११०० रामनाम लिखा करती थीं तत्पश्चात् सायंकाल से ८ बजे रात्रीतक शास्त्र पुराण सुनती थीं। इसके वाद स्नान पूजन कर भोजन करतीं और फिर सोजाती थीं।

इस प्रकार रानी साहिब अपने दिन व्यतीत कर रहीं थीं कि सन् १८५८ में अचानक सिपाही युद्ध का भयानक काण्ड उठ खडा हुआ और मेरठ कानपुर आदि में वृद्धि पाता हुआ झांसी तक आ पहुंचा १ जून १८५७ को अंगरेजी बंगलों में अग्नि लगनी आरम्भ होगई और ४ जून को मार काट होने लगी। उस समय झांसी में ७०—८० अंगरेज थे और लगभग एक हजार के विद्रोही सिपाही थे। इन अंगरेजों में से बहुत से तो बाल बच्चों सहित मारे गये और कुछोंने भाग भग कर जान बचाई। इस कार्य में रानी साहिब का इशारा तक न था उन्होंने यथा सामर्थ्य अंगरेजों को सहायता दीथी। इस भीषण समय में भी रानी साहिब ने बागी सिपाहियों को निकाल कर वृटिश कम्पनी के नाम से झांसी के राज्य का सुशासन किया था। गवर्नमेन्ट के उच्च पदस्थ कर्मचारी लोग यदि भ्रम में न पडकर विचारपूर्वक उनके उद्देश्य उनके भाव और उपकार को समझलेते तो कभी स्वप्न में भी लक्ष्मीबाई

को अपना शत्रु न समझते और उनको भी गवर्नमेन्ट के विरुद्ध रणांगण में खडा न होना पडता परंतु ऐसा न हुआ अंगरेजों ने उनको राजद्रोही समझ लिया। अत एव तेजस्विनी लक्ष्मीबाई ने अंगरेजों के चरणों में न नव कर अपनी इज्जत बनाए रखने के लिये युद्ध की सामिग्री एकत्रित करना आरम्भ किया। कोन विचार सक्ता था कि प्रतापशाली अंगरेजों के समीप भारत में फिर कभी यह अपूर्व दृश्य दीखेगा? किसके ध्यान में था कि पराधीनता से जकडे हुए निर्जीव चेष्टाहीन भारत वासियों में से एक बिधबा वीर नारी संहारणी मूर्ति धारण कर प्रगट हो पडेगी? लक्ष्मीबाई नें इस समय कामिनी के सुन्दर रूप को दूर कर वीर पुरुष का भेष धारण कर लिया है उनका कोमल शरीर लोह मय कठोर वख्तर से सुशोभित हो रहा है कोमल हाथमें पेनी तलवार विजली के समान कोंधा लेरही है शान्ति सुखद चन्द्रानन में प्रचण्ड सूर्य किरणों कासा तेज विकाश पारहा है और घोडे पर चढी हुई वडे धीर भाव सें अपनी सेना का निरीक्षण कर रही हैं। प्रिय पाठको! थोडी सी देर के लिये अपने नेत्रों को मींच कर ध्यानपूर्वक इस संहार कारिणी महाशक्ति की मूर्ति के दर्शन तो करो देखो तुम्हारे हृदय में एक अकथनीय विचित्र आनन्द का समुद्र उमडने लगेगा। रानी साहव के पास आरम्भ से ही ऐसे शुभचिन्तक योग्य पुरुष नहीं थे कि रानी साहब का कहा ठीक २ सम्वाद अंगरेजों तक पहुंचावें और उन का आकर कहदें किन्तु इसके विपरीत झांसी लेते समय फौज से निकाले हुए मनुष्य थे वे द्वेष वुद्धि से अंगरेजी सेना से लडने को तयार हुए और रानी साहवि को भडका दिया।

२३ मार्च सन् १८५८ को अंगरेजी सेनाने झांसी को चारों ओर से घेर कर गोला वरसाना प्रारम्भ कर दिया तब लक्ष्मी-बाई ने भी पुरुष वेषमें घोडे पर सवारी कर अपनी सेना को आगे बढाया अंगरेजी सेना के साथ संग्राम होने लगा रानी साहिब इस संग्राम से कुछभी भयभीत न हुई कई महीने तक वडे साहस पूर्वक युद्ध करती रहीं। रण चतुर अंगरेज सेनापति वीर नारी लक्ष्मीबाई के विचित्र युद्ध चातुर्य और अनिर्वचनीय साहस को देखकर चकित होगये तथा उच्च स्वरसे शावास शावास करने लगे लक्ष्मीबाई के सिवाय और कहीं किसीने युद्ध में सेनापति सरहूयूरोज को ऐसा उद्विग्न नहीं किया था। रानी साहब की संग्राम की अद्भुत युक्तिने सरहूयूरोज की सुशिक्षित सेना को छिन्न भिन्न कर डाला था अन्त में अपनी वहुतसी सेना के नष्ट होजाने पर भी लक्ष्मीवाई ने अपने-वीरत्व को न छोडा। लक्ष्मीवाई झांसी में अपने बचने का कोई उपाय न देख कर अपने पुत्र दामोदरराव को पीठ से वांध कर घोडे पर सवार हुई और अपने मुख्य २ वीर और सरदारों को साथ ले अंगरेजी सेना से लडती हुई शहर से बा-हर निकल गई सहृदय पाठको! देखो एक कमल बदनी विधवा विपत्तिग्रस्ता अवला का वडे २ चतुर योद्धाओं को काटते मारते और अपनी शरीर रक्षा करते हुए इस प्रकार एका एक सेना के वीच में होकर निकल जाना क्या साधा-रण शौर्य्य का काम है। लक्ष्मीवाई ने फिर वडे पराक्रम के साथ कालपी में अंगरेज सेना के साथ युद्ध किया परन्तु यहां पर भी इनकी जय न हुई कालपी अंगरेजों ने लेली इतने पर भी रानी साहब ने अपने धैर्य को न छोडा लक्ष्मीवाई ने "श-

रीरं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि" इस मंत्र की साधना में ही प्राण देदिये परन्तु दृढता का परित्याग नहीं किया। उन की बीरता की बिमल कीर्ति में किसी प्रकार की कालिमा न पड सकी।

१७ जून सन् १८५२ को ग्वालियर के समीप लक्ष्मीबाई नें फिर अन्तिम संग्राम किया। इसी युद्धके अन्त में इस बीर नारीका प्राणान्त हुआथा। इस घोर संग्राम में महारानी लक्ष्मीबाई ही अपनी सेना की अग्रिणी थीं देरतक संग्राम होने के बाद लक्ष्मीबाई अपनी एक सखी के साथ सेनाको चीरती हुई युद्धस्थल से बाहर निकलगई उनकी सखी को मारने को एक अंगरेज सैनिकनें आक्रमण कियाही था कि रानी साहिब ने तलवार की एकही चोटमें आक्रमणकारी को काट गिराया और फिर बिजली के समान चलपडी चलते २ बीचमें एक भारी नाला आगया बार २ चेष्टा करने पर भी उनका घोडा उसे न फांदसका बस इसी समयमें पीछे से एक अंगरेज सैनिक आपहुंचा लक्ष्मीबाई और उसका बहुत देर तलवार से युद्ध होतारहा एकबार सैनिक पुरुष की तलवार रानी साहब के मस्तक के एक भाग पर लगी और येही प्राण घातकभी हुई। परन्तु रानी साहब नें ऐसी दशामें भी अपने शत्रुको एकही वारमें प्राण रहित कर पृथ्वी पर सुवादिया। परन्तु रानी साहिब भी इस चोटसे विवश होगई रानी साहबका एक सुयोग्य नोकर इनकी यह दशा देखकर इनको पासकी एक झोंपडी में लेगया उस समय लक्ष्मीबाई वडी प्यासीथीं उसी झोंपडी के मालिकने पवित्र गंगाजल से लक्ष्मीबाई की प्यास को शान्त किया और रानी साहब नें सुखपूर्वक इसलोक को परित्याग कर स्वर्ग का

मार्ग ग्रहण किया १८ जून सन् १८५८ को भारत वर्ष का सच्चा स्त्रीरत्न देखते २ नेत्रों के सामने से सर्वदा को लुप्त होगया। यद्यपि लक्ष्मीबाई अब इस असार संसार में नहींहै तथापि आकल्प उनकी कीर्तिपताका फहराती रहेगी। लक्ष्मीबाई में ऐसे ऐसे उत्तम गुणथे कि जिनकी स्वयं बडे २ अंगरेजों ने शत्रुभाव होते हुए भी प्रशंसा कीहै ॥

---o---

वन्देमातरम् ।

दादाभाई नौरोजी

रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैर्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्ड खण्डै र्मलयाचलः किं परोपकाराय सतां विभूतयः॥

श्रीमान् मिस्टर दादाभाई नौरोजी का जीवनवृत्त सहृदय पाठकोंको एक अवश्य जानने योग्य बिषय है। ये वोही पुरुष श्रेष्ठहैं कि जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण अवस्था देशहित में व्यतीत की है ये वोही नर रत्न हैं कि जिन्होंने "स्वराज्य" का आदर्श हमारे सामने रखदिया है। आपका जन्म प्रसिद्ध बम्बई नगर में सन् १८२५ ईसवी ता० ४ सितम्बर को एक पारसी धर्माध्यक्षके घर हुआ था आपकी चार वर्ष की अवस्था भी पूर्ण नहीं हो पाई थी कि अनायास आपके पिताकी शरीर यात्रा पूर्ण होगई। अतएव इनके पालन पोषण और शिक्षाका भार इनकी माताके ऊपर आपडा। आपकी माता यद्यपि पठिता विदुषी नहीं थी तथापि वह बडी बुद्धिमती और "मातारिपुः पिताशत्रुः वालो येन न पाठ्यते सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये वको यथा" इस श्लोक के भाव को अच्छे प्रकार जानती थी तभीतो उन्हों ने इनके पढाने में पूरी २ कोशिश की। प्रथम ही प्रथम इनको पांच वर्षकी अवस्था में देशभाषा सीखने के लिये गुजराती पाठशाला में भेजा। उस शिक्षा के पूर्ण होनेपर इन्हें अङ्गरेजी सीखने के निमित्त 'एल्फिन्स्ट

इस्टी ट्यूट ' में भर्ती कराकर शिक्षा दिलाई। वहां भी इन्होंने अपने विद्यानुराग आदि सद्गुणों से अध्यापकों को मोहित कर लिया और समय २ पर बराबर इनाम पाते रहे सन् १८४५ के लगभग इनकी ये शिक्षा भी पूर्ण होगई इनकी अलौकिक बुद्धि को देखकर इनके अध्यापक प्रोफेसर आलिवर कहा करते थे कि दादाभाई नौरोजी भारत में एक नररत्न होगा। इसके अनन्तर बम्बई प्रान्तके प्रेसिडेन्ट सर अर्सकिन पैरी साहबने प्रसन्न तथा अपने खर्च से इन को विलायत भेजकर कानून पढाना चाहा। परन्तु उस समय कोई नवयुवक विलायत जाकर धर्म भृष्ट होकर ईसाई होगए थे इसलिये इनके बडों ने इने विलायत जाने से रोकलिया। कुछ ही दिनों बाद ये " एल फिन्स्टन " शिक्षालय में गणित, और पदार्थ विज्ञान सिखाने के लिये सहकारी प्रोफेसर हुए और थोडे दिनों बाद मुख्य प्रोफेसर जोज़फ पेटन साहब के विलायत चलेजाने पर यह जगह दादाभाई नौरोजी को मिली आपने अपने सद्गुणों से इस पद को सब से प्रथम प्राप्त किया था इससे पूर्व अंगरेजों के सिवाय किसी भारतवासी ने इतना ऊंचा स्थान प्राप्त नहीं किया।

पूर्ण दस वर्ष तक इस कामको बहुत ही योग्यता के साथ किया। इसी बीच में सन १८४५से१८५५ तक आपने अनेक लाभकारी सभा, समाज, पाठशाला छात्रालय पदार्थ संग्रहालय आदि अन्यान्य देशोपकारी कार्यों में अपना समय व्यतीत किया। आपने स्त्रीशिक्षा के लिये भी बडा उद्योग किया बम्बई प्रान्त में आपने ही सबसे प्रथम "पुत्री पाठशाला" स्थापन करने का सुयश प्राप्त किया। आप अपने साथ मित्रों

को भी ऐसे ही सुकार्यों में लगाये रहते थे स्वर्गवासी राव साहव विश्वनाथ नारायण मण्डलीक आपके अभिन्न हृदय मित्र थे।

सन् १८५१ ईसवी में इन्होंने गुजराती भाषा में "रास्त-गुफ्तार" नामक समाचार पत्र निकाला दो वर्ष तक इसके स्वयं सम्पादकरहे इनके सिवाय बहुत समय तक मिस्टर नौरोजी फरदूनजी, जहांगीरजी, वरदूनजी वाछा, एस. एस. बंगाली आदि सुयोग्य पुरुषों के देशोपकारी लेख भी इस पत्र में निकलते रहे । सखेद कहना पडता है कि इस पत्र में अब वैसे विचार पूर्ण लेखों का बिलकुल अभाव रहता है। हमारी राय में आपके विषय में इतना ही कहना बहुजन सम्मत और ठीक है कि अनेक सभा सोसायटीयों में व्याख्यान देना समाचार पत्रों में लेख देना शाला पुस्तकालय आदि स्थापन करने का उद्योग करते रहना आदि देशोपकारी कामों में ही आपका अहर्निश व्यतीत होता था। इन्हीदिनों में दादाभाईने अपना विद्याभंडार पूर्ण करने में भी कसर न रक्खी फारसी, लेटिन, फ्रेंच मराठी और हिन्दी भाषाओं को अपने निरवच्छिन्न परिश्रमसे बहुत शीघ्र सीखलिया गुजराती तो इनकी मातृभाषाही ठहरी अतः गुजराती भाषा जानने वालों को गुजराती समाचार पत्रों द्वारा इनके बिचार पूर्ण देशोपकारी लेखों के बांचने का सौभाग्य अधिक प्राप्त होता था।

सन् १८५५ में दादाभाईनें व्यापारोन्नति करना उचित समझ प्रसिद्ध "पारसी कामाकम्पनी" जो कि उन्हीं दिनों लन्दन में स्थापित हुई थी उसका एक हिस्सा लिया और उसके बंदोवस्त के लिये स्वयं इंग्लेण्ड पधारे। यद्यपि आपकी

यात्रा से उनके सम्बन्धी और मित्रों को दुःख हुआ, तथापि दादाभाई के उच्च उद्देशों को विचार कर उन लोगों ने संतोष प्राप्तकिया ।

दादाभाई जिसप्रकार अपने सद् गुणोंसे कुल बम्बई प्रान्तके प्रिय होगये थे उसी प्रकार उन्होंने इङ्गलेण्ड में जाकर अपने अलौकिक गुणों से अंगरेजों के मन अपनी ओर आकर्षित कर लिये । व्यापार की देख रेख करते हुए भी दादाभाई ने देशसेवामें कमी नहीं की । भारतवर्ष की सच्ची दशा और दुःख सरकार को सुनाने का साहस सब से पहले दादाभाई ने ही किया । सिविल सर्विस परीक्षा में अंगरेजों से मुकाबिला करने का सौभाग्य भारतीय युवकों को आपकी ही कृपा से प्राप्त हुआ । थोडे ही समय में दादाभाई के विचार और योग्यता की प्रशंसा अंगरेज लोग मुक्तकंठ से करने लगे कतिपय सभाओंसे सम्मान मिला तथा " कौंसिल आफ़लिवर पूल एथेनियम " आदि अच्छी २ सभाओं ने आपको अपना सभासद् बनाया । इन्होंने भी जान डिकन्सन आदि भारतहितैषी सुयोग्य अंगरेजों की सहायता से "ईस्ट इण्डियन असोसिएशन " तथा " लण्डन इन्डियन सोसाइटी " नाम की दो सभा संस्थापित कर सुयश प्राप्तकिया ॥ कुछ ही दिन व्यतीत होनेपर आप लंदन यूनीवर्सिटी कालिज में गुजराती भाषा की शिक्षा देने के अर्थ प्रोफेसर नियत हुए । आपने प्रथम ही प्रथम " ईस्टइन्डियन असोशियन " आदि सभाओं में " भारतकी दशा " पर व्याख्यान दिये तथा कतिपय लेख और छोटी २ पुस्तकें प्रकाशित कीं इनकी छपाई आदि में आपका निजका बहुत द्रव्य खर्च हुआ । इसका यह फल

हुआ कि इङ्गलेण्डवासी भारत की वर्तमान दशा को अच्छी तरह जान गये। सन् १८६२ में इन्होंने कामाकम्पनी से पृथक हो एक बडा कारोबार किया। व्यापार में आपको कई बार टोटा भी पडा परन्तु इनकी व्यापार सचाई और ईमानदारी प्रकट थी अतः इनको किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़ा।

सन् १८६५ में सिविल सर्विस के नियमों पर व्याख्यान दिये और "लन्दन इण्डियन सोसाइटी" के द्वारा स्टेट सेक्रेटरी के साथ पत्र व्यवहार किया। आप के इस परिश्रम का यह फल हुआ कि संस्कृत तथा अरबी भाषा के कम किये हुए नम्बर फिर यथापूर्व करदिये गये। इसी प्रकार भारत की भलाई के लिये विलायत में बारह बर्ष कठिन परिश्रम करने के उपरान्त सन् १८६९ में दादाभाई बम्बई को लौटे।

आप के बम्बई आने पर बंवई बासियोंने बडा हर्ष प्रकट किया सर फीरोजशाह मेहता के प्रस्ताव के माफिक आपके मान पत्र और कुछ रुपया भेट किया गया दादाभाई ने ये कुल रुपया देश की भलाई में खर्च करदिया क्यों न हो जिस नररत्न ने इङ्गलेण्ड जाकर देश भलाई में निजका बहुतेरा धन व्यय किया था वह इस धनको अपने काम में कब लासक्ता है।

सन् १८६९ में ही आपने "सन् १८६९ ईस्वी बम्बई रुपाल का कानून" इस विषय पर एक प्रभावोत्पादक बडा उत्तम लेख लिखा इस में बडे २ अकाट्य प्रमाणों से यह बात सिद्ध कर दिखाई थीं कि इस एक्ट के प्रचार से देश को हानि और प्रजा को बडा दुःख उठाना होगा। आप का लेख व्यर्थ न हुआ थोडे ही दिनों में स्टेट सेक्रेटरी ने यह एक्ट रद्दकर

दिया । सन् १९७३ में दादाभाई को पार्लीमेन्ट की फास्टेंट कमेटी के समीप कई एक भारतीय विषयों पर गवाही देने के लिये फिर विलायत जाना पडा सब से उपयोगी विषय जिस पर इन को बोलना पड़ा "भारत का दारिद्र्य और टैक्स-का आधिक्य" था गवाही देते समय इन्होंने बडे जोर के साथ कहा कि प्रत्येक भारतबासी की औसत वार्षिक आमदनी केवल बीस रुपया है । उस समय बहुत से ऐंग्लोइण्डियन अफसर मन में बडे ही नाराजहुए । नरपुङ्गव दादाभाई ने फास्टेन्ट कमेटी का ध्यान अंगरेजी शासन की कई और बातों की ओर आकर्षित किया । यथा अपार व्यय' हिन्दुस्थानके धनका इङ्गलेण्ड की ओर अधिक प्रवाह होना, सर्वोच्च अधिकारों से भारत वासियों को वञ्चित रखना आदि एक वर्ष बाद विलायत से लोटने पर सन् १८७४ में आप बडोदा राज्यके दीवान होगये । उस समय बडोदा राज्य की मल्हारराव गायकवाड के कुशासन के कारण बडी दुर्दशा थी तथापि आपने दोही वर्ष में राज्य की अवस्था को बहुत कुछ सम्हाल दिया । स्वार्थी राज सेवकों को दादाभाई का सुशासन क्यों पसन्द आता उन्होंने गोष्ठीकर दादाभाई के प्रति कुचक्र रचा . दादाभाई इस भेद को जानकर स्वयं पृथक् होगये ।

बडोदा का काम परित्यागकर दादाभाई बम्बई आये वहांपर म्युनिसिपल्टी के सभासद बन कर जन्मनगर की सेवा में लगे । सन् १८७५ में दादाभाई नौरोजी ग्रेण्ड ज्यूरी का सभासद बनाया गया, सन् १८६ में दादाभाई बम्बईयूनीवर्सिटी के भी सभासद बनाये गये तथा सन् १८८३ में गवर्नमेन्ट ने इनको "जस्टिस आफ़दीपीस" का खिताब दिया और सन् १८८३

में बम्बई के गवर्नर लार्ड रे ने दादाभाई को अपनी कौंसिल का मेम्बर नियत किया। सरकार ने आपको कौंसिल मेम्बर बनाया अतः भारतवासियों के आनन्द का पार न रहा प्रजाहितैषी सभी समाचार पत्र नाना प्रकार से अपने आनन्दको प्रकट करने लगे।

सन् १८८५ में नेशनल कांग्रेस की संस्थापना बम्बई नगर में हुई उस में आपने पूर्ण परिश्रम किया आपको इस का बीजारोपक कहाजाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। सन् १८८६ ईस्वी के आरम्भ में भारत के कल्याणार्थ दादाभाई पार्लीमेन्ट में प्रवेश करने के लिये फिर विलायत पधारे। उस समय इङ्गलेण्ड भर में पार्लियामेन्ट के चुनाव की बडी कोशिसें होरही थीं। उस चुनाव में ये भी हालबोर्नवरों की ओर से एक उम्मेदवार बनकर खडे होगये परन्तु प्रतिपक्षी कर्नल एफडक्क के ३६५१ वोटों के मुकाबले में इन के १९५० वोट आये अतः वे इस वर्ष पार्लियामेन्ट में स्थान न पासके। तथापि इन के लिये १९५० वोट आना भी कितने सौभाग्य की बात है क्योंकि एक तो ये उदारनैतिक दूसरे अङ्गरेज नहीं हिन्दुस्थानी, कुछ भी हो दादाभाई ने इस से नेक भी धीरज न छोडा वह बराबर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये उद्योग करते रहे सन् १८८६ के अन्त में आप भारतवर्ष को लोट आये और कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के सर्वजन सम्मति से दादाभाई कांग्रेस के सभापति बनाये गये। सन् १८८७ ईस्वी में दादाभाई ने "पबलिक सर्विस कमीशन" के समीप बहुत ही अच्छी गवाही दी तदनन्तर शीघ्रही पार्लियामेन्ट के चुनाव में प्रवेश करने के निमित्त इंग्लेण्ड चले गये। क्योंकि दादाभाई को

पूर्ण विश्वास था कि जब तक भारतवासियों के दुःख की राम कथा पार्लियामेण्ट में न सुनाई जायगी तब तक भारत की कुछ भलाई न होगी । आप सर्वदा ये ही कहा करते हैं कि हमारे युद्धके लिये पार्लियामेन्टही रणांगन है । सन् १८९२ में पार्लियामेन्ट मेम्बरी का फिर चुनाव हुआ इस वर्ष दादा-भाई सेन्ट्रल फिसबरी की ओर से उम्मेद वार हुए इस समय कई अंगरेज सज्जनों ने आपकी पूर्ण सहायता की । ७ जुलाई सन् १८९२ में आप पार्लियामेन्ट के सभासद नियुक्त होगये इस समाचार के सुनते ही भारत वासियों के हर्ष का समुद्र उमड पडा । समाचार पत्र पुलकित हो२ कर बधाइयां देने लगे । प्रिय पाठक विचारो तो पारसी कुल में जन्म लेकर दा-दाभाई नें भारत वर्ष का कितना उपकार किया है दादाभाईने स्वयं लिखाहै कि " मैं जैसा भी हूं ये मेरी माताकी चेष्टा का फल है " इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि माता पिता की शि-क्षाके बिना सन्तान का उच्च हृदय होना बहुत कठिन है । सन् १८९३ में कांग्रेस का नवां अधिवेशन लाहोर में हुआ उसमें भी आपही सभापति बनाये गये । उस समय आपने अपनी सारगर्भित वक्तृता सें भारतवासियों का उपकार किया । सन् १८९६ ईसवी में इन्होंने समर विभाग और जहाजी विभाग से पत्र व्यवहार किया कि फौजी और जहाजी उच्च परीक्षाओं में भारत वासियों के न लेने का क्या कारण है । इस विषय में इनको कोई संगत उत्तर न मिला तथापि दादाभाई नें दिखादिया कि महारानी विक्टोरिया के सन् १८५८ और १८८७ के घोषणापत्र के अनुसार हिन्दुस्थानियों को फौजी और जहाजी उच्चपदों के पाने का पूर्ण हक्क है

देना न देना आपकी नीति पर निर्भर है। इसके अनन्तर आप बराबर देशहितके कार्यों में ही अपने समयको व्यतीत करते रहे सन १९०६ में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन होना निश्चितहुआ उक्त कांग्रेस की प्रबंधकारिणी कमेटी ने इस वर्ष भी दादाभाई को ही सभापति चुना आपके सिवाय और किसी को तीन वार कांग्रेस का सभापति होने की प्रतिष्ठा नहीं मिली। इसी वर्ष श्रीमान् दादाइभाने भारत वासियों के समीप " स्वराज्य " का आदर्श रखकर भारत की भलाई करने का सामना किया था। दादाभाई तीन बार कांग्रेस के सभापति हुए इसका आनंद भारत बासियोंने ही मना या सो नहीं किन्तु इंग्लेण्ड बासी अंगरेज तथा भारत, ट्रांसवाल, बर्मा आदिके लगभग दोसौ महान पुरुषों ने आपको भोज देकर प्रसन्नता प्रगट कीथी। दादाभाई के बम्बई लौटने पर बम्बई प्रांतकी एसोसीएशन की कौंसिल की ओर से बडे हर्ष के साथ आपका स्वागत किया गया। अब दादाभाई८३ बर्ष के बूढे हैं तथापि भारतबासी उनका पीछा छोडना नहीं चाहते। परमात्मन! भारतबासियों को ऐसी सद्बुद्धि और सामर्थ्य प्रदान करो जो वे आत्माबलम्ब से भारत की भलाई करने में प्रवृत्त हों और दादाभाई निःशंक तथा कृतकृत्य होकर आपके स्मरण में शेष आयुको व्यतीत करें॥

—०—

॥ जयतुमातृभूमिः ॥

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या ।
चिन्ता परब्रह्म विनिश्चयाय ॥
परोपकाराय वचांसि यस्य ।
धन्यस्त्रिलोकी "तिलकः" सएव ॥

जिस समय संसार में धर्म्मकी हानि अधर्म्म की वृद्धि ज्ञान का नाश और अज्ञान का प्रकाश हुआ करता है। मनुष्य अपने कर्तव्याकर्तव्य को भूलकर अनीति मार्ग का अनुकरण करने लगते हैं। देश का देश रसातल को जाने लगता है। उस समय जगन्नियन्ता परमात्मा अपनी तेजो विशेष कलाओं द्वारा अवतार धारण कर देश का उद्धार किया करते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं श्री मुख से अर्जुन प्रति कहा है ;—

यदा यदाहि धर्म्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ॥

इस में तो कुछ सन्देह ही नहीं कि जीव मात्र उसी सर्वाधार परमात्मा की विभूति है। परन्तु जहां जहां अभय, सत्य, परोपकार, आदि दैवी सम्पत्ति * के विशेष लक्षण पाये जाते

---

* अभयं सत्व संशुद्धिर्ज्ञान योगव्यवस्थितिः । दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवं १ अहिंसा सत्य मक्रोधस्त्यागःशान्ति रपैशुनम् । दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्री रचापलम् २ तेजः क्षमाः धृतिः शौच मद्रोहो नातिमानिता । भवन्ति सपदं दैवी मभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

है वहां वहां ईश्वर की विशेष सत्ता होती है। इन्ही दैवी लक्षणों युक्त व्यक्ति को हमारे हिन्दू शास्त्रों में अवतार मान कर सम्बोधित किया है । यथा भगवान् वेदव्यास, भगवान् शंकराचार्य आदि । आज हम जिस महात्मा का चरित्र लिखने बैठे हैं उसमें अनेक दैवी लक्षण पूर्णरूपेण घटित होते हैं । जिस ने अपनी विद्वत्ता, कार्यदक्षता, स्वार्थत्याग, देशोपकार, सदाचार से कोटि कोटि मनुष्यों को मुग्ध कर लिया है । अपनी सदसद्विवेचिनी बुद्धि की प्रगल्भता से स्वेच्छाचारी अधिकारियों को कम्पायमान कर दिया है । जिस के शरीर की सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्नायुओं में देशभक्ति संचार कर रही है । जिस ने अपना सर्वस्व देशोपकार में लगा रक्खा है । जो गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी और काम होते हुए भी निष्काम योगी है । जिस के लिये सुख दुःख बराबर है । क्या उस स्वनाम धन्य प्रातस्मरणीय महात्मा " तिलक " को यदि हम तन्नामानुकूल " महेशावतार " कह कर पुकारें तो कोई आपत्ति कर सकता है ? कदापि नहीं तिलक भारततिलक हैं । तिलक भारत के आराध्य देव हैं तिलक भारत के सर्वस्व हैं । हमारे चरित्रनायक (श्री तिलक) के पूर्व पुरुष रत्नागिरि प्रान्त के चिखिल नामक ग्राम में निवास किया करते थे । इन के प्रपितामह केशव राव तिलक का जन्म इसी ग्राम में हुआ था केशवराव जी बलवान् बुद्धिमान् साहसी और देशभक्त थे जिस समय दक्षिण में मरहटों का अधःपतन और अङ्गरेजों का अभ्युत्थान हो रहा था । महाराष्ट्रके कितने ही किलोंपर अङ्गरेजी पताका फहराने लगीथी । उस समय ईस्टइन्डिया कम्पनी के अधिकारी अङ्गरेजों ने उक्त केशवराव जी को

कम्पनी की तरफ से मामलत दार रहने का अनुरोध किया। परन्तु स्वदेशाभिमानी ब्राह्मणकुल भूषण केशवराव ने उच्च स्वर से कह दिया कि " यदि मुझे नोकरी ही करनी मंजूर होगी तो स्वदेशियों की ही करूंगा विदेशियों की कदापि नहीं ॥

पं० केशवराव जी के यहां रुक्मिणी बाई और दुर्गा बाई नाम की दो स्त्रियां थीं। रुक्मिणी बाई के दो पुत्र हुए प्रथम का नाम रामचन्द्र और द्वितीय का काशीनाथ पड़ा। थोड़े ही से समय के बाद माता की शरीर यात्रा समाप्त होजाने के कारण तथा पिताजी के मामलतदारी में चिन्तित रहने के कारण रामचन्द्र विद्या विवेकादि सद्‌गुण सम्पन्न न हुए। इन का विवाह भी बाल्यावस्था में ही हो गया था। केशवराव जी जब मामलतदारी के पद को त्यागकर घर आगये तो समस्त कुटुम्ब के पालन पोषण का बोझ रामचन्द्र पर ही आ पड़ा ॥ अतः इन्होंने अंगरेजों की नौकरी करली। इसके कुछही दिनों बाद इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम गंगाधर रक्खा गया। गंगाधर में अनेक शुभ लक्षण पाये जाते थे विद्याध्ययन में इनका पक्का प्रेमथा चिखल में कोई स्कूल वा पाठशाला नहीं थी अतः ये पासके दापोली नाम के कस्बे में जाकर विद्याभ्यास करने लगे। थोड़ेही समय में महाराष्ट्र भाषा में अच्छा ज्ञान प्राप्त करलिया। और गणित, इतिहास, व्याकरण, काव्य, आदि में भी अच्छी योग्यता प्राप्त करली अनन्तर ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त ये पूना जाकर केशवराव मराठकर की पाठशाला में पढ़ने लगे। अनेक विघ्न उपस्थित होते रहने पर भी गंगाधर पन्त विद्याभ्यास को नहीं छोड़ते थे। दैवात् गंगाधर पन्त की माता एवं रामचन्द्रराव की पत्नी पार्वतीबाई विशूचि-

का से आक्रान्त होकर परलोकवासिनी हुई । रामचन्द्र जी अपनी प्यारी पत्नी के शोक में ऐसे निमग्न हुए कि गंगाधर की लघुअवस्था का बिचार बिना किये ही ईश्वर स्मरणार्थ चित्र-कूटादि को चले गये । एकाएक समस्त गृहभार गंगाधर परही आपड़ा अतः इन्होंने पढ़ना छोड़कर विवशहो दसरुपे महीनेकी अध्यापकी करली मालवण में अध्यापक पदपर काम करते हुए भी ये वरावर संस्कृत विद्या में अपनी व्युत्पत्ति बढ़ाते रहे । कुछ काल व्यतीत होने पर इन की चिपलूण को बदली होगई वहीं पर पार्वती बाईके साथ इनका विवाह हुआ । यहीं पर इनका १५) वेतन होगया और एक कन्या उत्पन्न हुई । कुछ दिनों बाद ये १५)से२५)की तरक्की पर रत्नागिरि को भेजे गये रत्नगिरि में ही इनके यहां एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ पाठकगण ! ये वाल अपने पिता के लिये ही नहीं किन्तु कोटि२ भारतबासियों के लिये एक अमूल्य रत्न मिला । येही हमारे चरित्रनायक श्रीयुत बाल गंगाधर तिलक हैं आपका जन्म २३ जौलाई सन् १८५६ में हुआ था * यह निर्विवाद सिद्ध है कि माता पिता का मुख्य कर्तव्य बालक की शिक्षा पर ध्यान रखना है । परन्तु भारतवर्ष में ऐसे माता पिताओं की बहुत कमी है । बंगाल और दक्षिण प्रान्त को छोड़कर मध्यदेश, सिंध, युक्तप्रदेश में तो बिलकुल अभावसाही है । दक्षिणात्य ब्राह्मणों में ये प्रथा है कि जब बालक कुछ२ बोलने

---

* आप के जन्म से प्रथम, आपकी माताने आदित्य व्रत सूर्योपस्थना की थी तब भारत भास्कर श्रीयुत तिलक का जन्म हुआ था क्या ही अच्छा होता कि वह पूर्ण १२ वर्षमें इस व्रतको समाप्त करतीं ॥

लगता है तभी से उसको छोटे २ श्लोक मास पक्ष तिथि नक्षत्र अंक आदि कण्ठ आदि कराये जाते हैं। तदनुसार महामति तिलक को भी शिक्षा दीगई। इन्होंने चार वर्ष की अवस्था तक अनेक श्लोक कण्ठ कर लिये। ये बालकपन में ही इतने चतुर थे कि जब कभी इनको पिता का बताया हुआ श्लोक ठीक याद न रहता तो ये श्लोक सुनाने को जाने से प्रथम माता से भारीसा कम्बल आदि कुछ कपड़ा मांगते और उसे ओढ़कर चुपसे पिताजी के सामने जा बैठते। इनका ऐसा स्वरूप देखतेही इनके पिता गंगाधर पन्त ताड़जाते थे कि आज महानुभावको श्लोक याद नहीं हुआ मालूम होता। गंगाधरजी मुस्करा कर धीरे से इनके गालपर थप्पड़ मारकर उसी श्लोक को कण्ठ कराने को बता देतेथे। सन् १८६१ में विजया दशमी के शुभ मुहूर्त में इनको पाठशाला में विद्यारम्भ कराया। ऐसेही तिलक ने थोड़ेही से समय में अच्छी योग्यता प्राप्त करली। यह इस पाठशाला के सुयोग्य छात्र गिने जाने लगे। गणित में प्रोफ़ेसर साहिब को डगमगा देने की जो प्रशंसनीय सामर्थ्य इनमें हो गई थी। ये सब इनके पिताकी सुशिक्षण पद्धति का ही फल था। सन् १८६४ ई० में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तबतक संस्कृत की रूपावली, समासचक्र, अमरकोश, आदि पुस्तकें भी पढ़ डाली थीं। तथैव नित्यकर्मादि भी सीख लिये थे। इतनी छोटी अवस्था में इतना ज्ञान प्राप्तकर लेना क्या थोड़ा काम है! महात्मा तिलक के यज्ञोपवीत होने के दो वर्ष पश्चात् पर गंगाधर पन्त पूना में असिस्टेन्ट डिपुटी एज्यूकेशन इन्स्पैक्टर होगये। लोकमान्य तिलक की १६ वर्ष की अवस्थामें ही इनके पिता गंगाधर पन्त का सन् १८७२ में स्वर्ग वास

होगया । अतः अपने पिता के निरीक्षण में सुखपूर्वक पूर्णविद्या निष्णात होनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ । परन्तु इन्होंने अपने चाचा तथा मामाकी देख रेख में अपनी पठन व्यवस्था बराबर जारी रक्खी पिताकी मृत्यु के चारही महीने बाद एन्ट्रैन्स पास होगये । इसके चार बर्षके अनन्तर सन् १८७६ में डेकन कालेज द्वारा बड़ी प्रशंसा के साथ ऊंचे दर्जे में बी.ए. पास किया और सन् १८७९ में विलायत में ऐल. ऐल. बी. की सनद हासिल की धाराशास्त्र (कानून) का अभ्यास करने के साथ ही साथ लो० तिलक ने मिस्टर आगरकर तथा अन्यान्य सहयोगी युवकों से मिलकर भारत वासियों को लाभ पहुंचाने की पाण्डु लिपि तैय्यार की । इन उत्साही युवकों ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अंगरेजों की नौकरी नहीं करेंगे किन्तु देशवासियोंको सस्ती शिक्षामिले इसी उद्योग में अपना समय व्यतीत करेंगे । लोकमान्य तिलक ही ऐसे बिचारों के उत्पादक थे । इनके ऐसे २ बिचारों को देख सुनकर अनेक मनुष्य हास्य किया करते थे परन्तु इन लोगों का हास्य लो. तिलक व उनके मित्रों का कुछ भी उत्साह भंग नहीं कर सक्ताथा (लोकमान्य तिलक का सिद्धान्त था कि मनुष्य जिस कामको दृढ़ निश्चय करके करता है उसे परमात्मा अवश्य सिद्ध करता है) इसी समय एक और प्रसिद्ध देशहितैषी " विष्णुशास्त्री चिपळूनकर " इनमें सम्मिलित होगये यद्यपि इन लोगों से अवस्था में सबसे बडे थे तथापि बड़े उत्साही और विज्ञथे मराठी भाषा लिखने में पूरी २ प्रसिद्धि प्राप्त करचुके थे विष्णुशास्त्री का यही दृढ संकल्प था कि पूना में हाईस्कूल अवश्य स्थापित करूंगा । लोकमान्य तिलक, आगरकर, विष्णुशास्त्री, और श्रीयुत नाम

जोशी इन चार पुरुषों ने असीम परिश्रम कर २ जनवरी सन्
१८८० में पूनामें एक नया इङ्गलिशस्कूल स्थापित करदिया
श्री आगर कर को छोडकर उक्त तीनों पुरुषों ने
निर्वाह मात्रपर उसमें पढ़ाना आरम्भ कर दिया ।
जून में मि० आपटे और इसीवर्ष के अन्त में मि० आगरकर
भी इसी देश हितैषी गोष्ठी में आ मिले । फिर क्याथा उन्होंने स्कू-
ल को चलाने के साथ २ इङ्गलिश भाषा में भी " मराठा "
और मराठी भाषा में " केसरी " नामके दो समाचार पत्रभी
निकाले । थोडेसे ही समय में इन दोनों पत्रों ने अच्छी उन्न-
ति करली इधर विष्णु शास्त्री ने "आर्य्य भूषण" और "चित्रशा-
ला" नामक दो प्रेस खोले जिसमें आर्य्य भूषण तो उक्त पत्रों
के छापने के काममें लायागया । और चित्रशाला में उत्तमोत्त-
म चित्र छपने लगे ये चित्र प्रायः भारत के प्रसिद्ध पुरुषों के
होते हैं जिनके द्वारा देश को बहुत कुछ लाभ पहुंच सक्ता है ।
इन पांचों नररत्नों ने अपना २ काम ऐसी उत्तमता के साथ
किया कि सब्बजन एक स्वरसे इनके कार्य्योंकी प्रशंसा करने लगे ।
शीघ्रही मराठा और केसरी नामी एक जोरदार अखबार गिने जा-
ने लगे । बस ऐसेही समय में इस देशोपकारणी गोष्ठीको अप-
ने कार्य्य की परीक्षा देने का अवसर आन पहुंचा । "केसरी"
और " मराठा " ने महाराज शिवाजीराव कोल्हापुरके साथ
सरकार के बर्ताव के बारे में कडी आलोचना की थी । अतः
श्रीयुत लोक० तिलक और श्री: आगरकर पर सम्पादक होने
के कारण गवर्मेन्ट की ओरसे अभियोग चलाया गया । दैवात्
इसी विपत्ति के समय में विष्णुशास्त्री का शरीरान्त होगया ।
अनन्तर श्रीयुत तिलक और आगरकर को तीन २ मासकी
सादी कैद होगई । यद्यपि इन दो विपत्तियों के कारण उन-

रोक्त समस्त कार्यों का भार श्रीयुत आपुटे और नाम जोशीके सिर परही आपड़ा परन्तु इन दोनों ने बड़े धैर्य के साथ काम को ज्यों का त्यों वनाये रक्खा । कोल्हापुर का मुकदमा इनके लिये ऐसा हितकर हुआ कि चारों ओर से सभ्यजन उक्त दोनों पत्र और स्कूलकी सहायता में लग पड़े । विष्णुशास्त्री की मृत्यु के पश्चात् श्रीयुत तिलकही इस गोष्ठी के प्रधान नेता और नाम जोशी कार्यकर्ता तथैव श्रीयुत आगर कर और आपुटे कर्तव्य पालक हुए । सन् १८८४ के अन्त में आपने पूना में डेकन ऐज्यूकेशनल सोसायटी बनाई स्वयं श्रीयुत तिलक और उनके साथी आजन्मको इसके सदस्य स्थिरहुए थोड़े से दिनों के बाद प्रोफेसर केलकर प्रो० गोले प्रो० धारप प्रो० गोखले प्रो० भानू प्रो० पाटनकर आदि सज्जन उक्त गोष्ठी में सम्मिलित हुए । इसी सोसायटी के अवश्य उद्योग और उत्साहसे सन्१८८५ में फरग्यूसन कालिज की संस्थापना हुई । मकान बनाने के लिये दो टुकड़ा पृथ्वी मोल ली गई । अंतमें लार्ड रे गवनर बम्बई ने भी एक टुकड़ा जमीन कालेज को देकर अपनी उदारताका परिचय दिया जिसपर बड़ाभारी मकान कालिज के अर्थ निर्माण कराया गया । लाइफ मेम्बरों ने छाती ठोककर प्रतिज्ञा की कि २० वर्षतक प्रोफेसरी का कर्तव्य पालन करेंगे सारांश ये कि कालेज अच्छी तरह उन्नति करता चला गया यह निर्विवाद सिद्ध है कि सब मनुष्यों की प्रकृति और बिचार एकसे नहीं हुआ करते अतएव श्रीयुत आगरकर और लोकमान्य तिलक महोदय के धर्म तथा सामाजिक बिचारों में मत भेद होने के कारण श्री० आगरकरजी इस गोष्ठी से पृथक् हो "सुधारक" नामका पत्र निकालने लगे।

केसरी, और मराठा, पत्र तथा आर्यभूषण प्रेस तिलकजी के हस्तगत हुआ। महात्मा तिलक पहलेही से ये चाहा करते थे कि लाइफ मेम्बर अपना समस्त समय कालेजकी देखभालमें ही लगाया करें परन्तु मेम्बर इस प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुए। इसी कारण सन् १८९० में लो० तिलक कालेज के काम से पृथक् होगये इसी प्रकार श्रीयु० नाम जोशी भी शनैः शनैः कालेज के सम्बन्ध से अलैदे होगये। श्रीयुत तिलक जिस समय अध्यापक थे उस समय यद्यपि ये गणितकी ही शिक्षा देतेथे तथापि समय पड़ने पर संस्कृत, अंगरेजी, और पदार्थ विज्ञान की भी शिक्षा दिया करते थे। छात्रवर्ग आपकी शिक्षण पद्धति से अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। लो० तिलक कालिजसे पृथक् होकर अपना समय सर्व साधारण को लाभ पहुंचाने में व्यतीत करने लगे (उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्) इस महा मन्त्र को सिद्ध करना ही उनका कार्य हुआ। कुछ दिनों बाद बड़े लाटकी कौन्सिलमें एक कन्सेन्ट बिल पेश हुआ इस कानूनके द्वारा १२ वर्ष अवस्था की पत्नी से पुरुष सम्बन्ध नहीं रख सकता था। हिन्दुओं की प्रथा और लोक व्यवहार में सरकार का उक्त हस्तक्षेप देखकर महात्मा तिलकसे मौन न रहा गया उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ इस कानून का विरोध किया। कालेज को छोड़ देने के उपरांत आपने कानूनकी परीक्षा देने वालों की श्रेणी निश्चितकर स्वयं पढ़ाना आरम्भ करदिया और केसरी का सम्पादन भी करते रहे। उसी समय प्रोफेसर गोखलेने कालेज के कार्याधिक्य होने के कारण "मराठा" का सम्पादन छोड़ दिया अतः मराठा के सम्पादनका भारभी तिलकजी ही को उठाना पड़ा प्रिय पाठकों! विचारो तो

कानून जैसे कठिन विषयकी शिक्षादेना मराठा और केसरी जैसे दो योग्य पत्रों का सम्पादन करना तथा अपने नित्य कर्मों को करते हुए अन्यान्य देशोपकारी कार्य्योंमें योग देते रहना क्या साधारण मनुष्य का काम है ! नहीं २ कदापि नहीं तिलक असाधारण पुरुषपुङ्गव हैं ।

श्रीयुत तिलकने अनेक यूरोपियन और अमेरिकन विद्वानोंका ऐसा ख्याल जानकर कि हिन्दुओंके बेद ईसामसीह से केवल हज़ार बारहसौ बर्ष पहिलेही लिखे गये हैं । एक पुस्तक प्रणयनकी जिसमें कि प्रमाण और युक्तियों द्वारा उक्त विद्वानों के सिद्धान्तोंका खण्डन कर सिद्ध करादिया कि "बेद" जगत् की समस्त पुस्तकों में सबसे प्राचीन हैं जिसको कि कोई कह ही नहीं सक्ता । इस पुस्तक के प्रकाशित होतेही यूरुप और अमेरिका के बड़े २ विद्वान् आपको अत्यन्त आदर की दृष्टिसे देखने लगे । उसी समय जगत्प्रसिद्ध प्रोफेसर मैक्समूलर साहब से आपका पत्र ब्यवहार हुआ । सन् १८९७ ईस्वी में लोकमान्य तिलक पर प्रथमही प्रथम सरकार की ओर से सिडीशन [राजद्रोह] का अभियोग चला । मुकदमे का स्वरूप देखकर इनके कितनेही मित्रोंने मुआफी मांगनेके लिये अनुरोध किया परन्तु महर्षि तिलक ने येही कहा कि मैं मुआफी मांगकर निर्दोष होने पर भी दोषी बनना नहीं चाहता, क्षमा मांगने पर मेरे लिये एण्डमानटापू और भारतबर्ष बराबरहै इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं कि भारतवर्षके राजनैतक आंदोलन कर्ताओं में यदि कोई भी यथार्थचित्त तथा वाच्य: है तो वह तिलकही है अंततो गत्वा इस मुकदमे में तिलक को १८ मासकी कठोर सजा मिली, इस कठोर सजा का शोक भारतवासियों को ही हुआहो

सो नहीं किन्तु इंगलैण्डनिवासी मैक्समूलरसाहव को भी बडा
शोक हुआ क्यों नहीं गुणी की परीक्षा गुणीही कर सकता है
"गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः। अलि-
रेतिवनात्पद्मं न दुर्दुरस्त्वेकवासोऽपि" मैक्समूलर साहब ने
भारतसचिव द्वारा महारानी विक्टोरियासे कुछ प्रार्थना की इस
के कुछही दिनों वाद तिलक महाराज की सजा घटाकर छः
मास की करदी गई तथा और २ कामों में भी सरलता करदी
गई– इस से वहुत मनुष्यों को दृढ विश्वास होगया कि ये सब
रियायतें मैक्समूलर साहिव की प्रार्थनाही से हुईं वहुत सम्भव है
कि ऐसाही हुआ हो परन्तु क्या अब भी अंगरेजों में मैक्समूलर
के समान विवेकी वम्बई प्रांतिक सभा के पांच अधिवेशन आप
की चेष्टा से वडी योग्यता के साथ हुए आपही इस के सेक्रिटरी
नियुक्त हुए थे– इन अधिवेशनों में पूरी २ सफलता प्राप्त हुई
एवं जनसमूह पर अच्छा प्रभाव पडा– अन्तिम सभा के सभा-
पति सरफीरोजशाह मेहता हुए थे इस के दूसरेही वर्ष के आ-
रम्भ में हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा होगया इसका कारण तिलक
महोदय ने अंगरेज अफसरों का अनुचित पक्षपात निर्धारित
किया अतः कुछ अफसर लोग आप से नाराज होगये।

इन्हीं दिनों तिलक महोदय ने महाराष्ट्र देश में दो नवीन
उत्सव करने की प्रथा डाली प्रथम श्रीगणपति महोत्सव
और दूसरा शिवाजी जयन्ती–आपका मत है कि अपने आरा-
ध्यदेव तथा देशी महत्पुरुषों की प्रतिष्ठा–तथा स्मारक स्थापित
करने से देश में सदाचरण तथा देशहितैषिता की वृद्धि होती
है। सन् १८९५ में जब आपने शिवाजी जयन्ती का उत्सव कराया
था उसी समय २३ अप्रैल के "केसरी" में महाराज शिवाजी

की समाधि के जीर्णोद्धार के लिये चन्दे की विज्ञप्ति प्रकाशित की। तत्काल २००००) रुपया एकत्रित होगये फिर क्या था समाधि के जीर्णोद्धार के साथ साथ अगले वर्ष एक भारी उत्सव करना निश्चय हुआ परन्तु दैवात् प्लेग प्रकोप हो जाने के कारण ये उत्सव इस वर्ष न होकर सन् १८९७ में हुआ। इस समय भी ये उत्सव प्रति वर्ष कई नगरों में मनाया जाता है सन् १८९६ ईस्वी में जब बम्बई प्रान्त में भयंकर अकाल पडा था उस समय पूनामें यह हालत होगई थी कि कंगाल भूखे मनुष्यों के समूह अन्न की दूकानों को लूटने को तयार फिरते थे। उस कठिन समय में तिलक जी ने कई दूकानें खोल कर बहुत ही सस्ते भाव में अन्न बेचकर पूना को लूट से बचाया था। उसी समय समाचार मिला कि नागर तथा शोलापुर के जुलाहे भूखे मरे जाते हैं—यह सुन आप से न रहा गया वहां पर स्वयं पहुंचे और अपनी तदबीर से उन लोगोंके प्राण बचाये—आपने सार्वजनिक सभा के द्वारा बम्बई सरकार को लिखा कि स्थानीय सभा जो अन्न कष्ट दूर करने का कार्य कर रही है—यदि उस को कुछ सहायता दीजाय तो बहुत कुछ उपकार हो सक्ता है-- परन्तु न मालूम किस कारण अफसरों का ध्यान इस ओर न आया ? प्लेग प्रकोप के समय भी लोकमान्य तिलक ने बडा परिश्रम उठाया पूना में प्लेग के फैलतेही इन्होंने वहां पर एक अस्पताल खोल दिया जिस में कि प्लेगाक्रांत रोगियों की पूरे तौर पर चिकित्सा [इलाज] किया जाता था—जिस समय प्लेग ने पूरी तौर भयंकर रूप धारण किया बडे बडे नामी उपाधिधारी नेता प्राण बचाकर पूना से भाग गये थे, परन्तु धन्य तिलक! जो अपने कर्तव्य से तनक विचलित न हुएवह—

बराबर पूना में ही मौजूद रहे और नाना प्रकार से प्लेगग्रस्त रोगियों की रक्षा में लगे रहे — तिलक महोदय स्वयं अपने प्लेग-कैम्प से अनाथ रोगियों को भोजन भी दिलाते थे—आप ने केसरी और मराठा आदि पत्रों के द्वारा सर्कार से प्रार्थना की कि—प्लेगकी धड़ पकड़ में प्रजा के साथ सहानुभूति दिखाते हुए कार्य करना श्रेयस्कर होगा। अधिक क्या सन् १८९७ में तिलक महोदय सिडीशन अभियोग में दण्ड देते समय विपक्ष भाव होते हुए भी जस्टिसस्ट्रेची ने आप के प्लेग सम्बन्धी देशोपकारी कामों की प्रशंसा की थी सदैवही तिलक के महाप्राण दुःख दरिद्रतासे पिसते हुए देशवासियों के लिये पिघलते आये हैं। यौवन के आरम्भ में जब इन्द्रिय—सेवाही लोगों का चित्त खींच लेती है, तब श्रीयुत तिलक ने महाराष्ट्र-भूमि को दुर्भिक्ष से जर्जरित देख कर देशसेवा में अपने जीवन को संकल्पित कर दिया। उस समय भी सरकार को मालगुजारी वसूल करते देख कर उन्होंने प्रजा को समझाया कि ऐसे मौके पर मालगुजारी देने से इनकार करना गैर कानूनी नहीं है। उसी दिन से प्रजा के हृदय में तिलकजी की प्रेम मयी मूर्ति स्थापित हुई। क्रमशः उस मूर्ति पर लोगोंकी हार्दिक भक्ति उछलनेलगी जातीय भावकेभक्त साधक तिलकने देशवासियोंमें जातीय भावका प्रभाव बढ़ानेकी वीरता उभारने वाला गणपति उत्सव और जातीय महापुरुष शिवाजी महाराज का महोत्सव जारी कर सोते हुए मराठों को जगाया और देश के लिये पढ़े लोगों को अंगरेजी पत्र "मराठा" और मराठी पत्र "केसरी" जारी कर संजीवित किया— इस समय केसरी की ग्राहक संख्या कुल अंगरेजी और देसी भाषा के अखबारों से अधिक है कांग्रेस के अटलधर्मी तिलक ने इसे

भिक्षानीति की सामग्री बने रहने के विद्वेषी बनकर भारत भर के विद्वान नवयुवाओं के हृदय में भिक्षुकपन की ओछाई की घृणा ला देने के साथ २ अपनी महिमामयी मूर्तिकी प्रतिष्ठा की उसहनिवृत्ति की पताका फहराने वाली कांग्रेस चाहे अपने डेढ चांवल की खिचडी अलेदे पकाकर भले खुश होले पर श्रीयुक्त तिलक के महाप्राण की प्रेरणा से सम्पूर्ण देशवासियों में उच्च स्वावलम्बन भाव का जो महिमामय आदर्श अंकित हुआ है वह त्रिकाल में भी मिटने वाला नहीं है।

२२ जून सन् १९०८ ईस्वी को भारतमाता की आंखों के तारे अखिल भारत के राष्ट्रीय पक्षके आराध्य अगुआ राजनैतिक महर्षि लोकमान्य तिलक फिर राजद्रोह के अभियोग में गिरफतार किये गये। इन दिनों वे बम्बई जाकर काल सम्पादक देशभक्त पराञ्जपे महोदय को अभियोग से बचाने के लिये प्राणपन से चेष्टाकर रहेथे। और बम्बई के सरदार गृह में एक आराम कुर्सी पर बैठे हुए देशभक्त पराञ्जपे से विचार कर रहे थे। इसी वीचमें मिस्टर स्लोन के छुपे वेषवाले गण ने भीतर आकर गिरफतारी का वारन्ट दिखाया। सूरत देखतेही तिलक महोदय ने कहा " आगये ? इतना विलम्ब क्यों किया ? मैं तयारहूं प्रतीक्षा में ही था, चलिये। यह कहकर तिलक महाराजने अपनी पोशाक पहनी। वही सदाके अनुसार पूने की देशी जरदार पगडी सफेद अंगरखा और पूने का ही बना देशी मराठी जूता पहनकर सानन्द पुलिस के साथ चलदिये। दूसरे दिन अर्थात् २३ जून सन् १९०८ को चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट मिस्टर आस्टन के सामने तिलक महोदय के मुकद्दमे का आरम्भ हुआ। इसके लिखने की जरूरत नहीं कि इस

खबर के पाते ही वडे २ वकील वारिस्टर देशभक्त सेठ साहू-कार विजली के समान तिलक महाराज की पैरवी करने को टूट पडे थे। मुकदमे का विषय था तिलक महाराज का लिखा "देशाचें दुर्दैव" शीर्षकलेख। इसदिन कुछ विशेष कार्यवाही न होकर मुकदमे की पेशी २९ तारीख को निश्चित हुई एक लाख रुपे से अधिक तक जमानत देने की प्रार्थना करने पर भी मजिस्ट्रेट बहादुरने उन्हें जमानत पर नहीं छोडा। पहला मुकदमा तो थाही परन्तु पुलिस को इतने पर ही संतोष न हुआ १२४ अ और १५३ दफे के होते हुए भी पुलिस ने ९ जून के केसरी के "हे उपाय टिकाऊ नाहींत" लेखपर दूसरा वारन्ट निकालकर गिरफ्तारी में ही दुवारा गिरफ्तार कर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया। अस्तु तारीख के दिन मुशल धार पानी बरस रहाथा तो भी लगभग पन्द्रह बीस हजार मनुष्य माहात्मा तिलक के दर्शन और मुकदमा सुनने के अर्थ मैदान में डटे हुए खडे थे। कई २ सौ की कितनी ही टोलियां बन बन कर तिलक के कर्तव्यों का व्याख्यान और गुण गान कर रही थीं। कई २ हजार कण्ठों से निकली हुई 'वन्देमा-तरम्' तिलक महाराजकी जय, शिवाजी महाराज की जय, की घोर गर्जना आकाश को कँपारही थी।

घुड़सवार पुलिस का कठिन पहरा होते हुए भी कुछ निर्बुद्धि लोग आवेश में आकर दंगा करने को उतारू होगये थे। अतः पुलिस पर पत्थर बरसने लगे कई यूरोपियन अफसर भी घायल हुए। अधिक क्या स्वयं मिस्टर ब्रेन फर्ड ने इक़-रार किया था कि कल मुझे भय था कि लोग पुलिस के हाथ से कहीं तिलक को छुड़ा न लेजावें। इस तारीख के दिन

मुकदमे की जरूरी कार्यवाही के होने के बाद श्रीयुक्त तिलक ने कहा कि मैं अपना कथन सेशंस में कहूंगा। मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ। यहां भी श्रीयुक्त तिलक की जमानत नामञ्जूर हुई। अन्त को अपने मुकदमे में स्वयं श्री तिलक महाराज ने हाईकोर्ट को सम्बोधन कर एक सप्ताह तक जो भाषण दिया दोनों पक्षों में जैसी २ गहरी बहसें हुईं उन सबका इस छोटे से जीवन चरित्र में उद्धृत करना सर्वथा अशक्य है।

२३ जुलाई सन् १९०८ को रात्री के साडे नौ बजे पारसी कुल भूषण दावर साहिब ने तिलक महोदय का मुकदमा सुनाया। पाठक ! जानते होंगे कि नौ जुरियों में दो पारसी और सात युरूपियन थे। ये भी सौभाग्य की बात है कि दो जुरियों ने तो तिलक को निर्दोष बताया। जज दावर महाशय ने बडी कृपा के साथ बावन वर्ष के वृद्ध विद्वान् लोकमान्य तिलक को छः वर्ष के काले पानी की सजा और एक हजार रुपया जुर्माना किया, प्रियपाठक गण ! सजा सुनाने के बाद महर्षि तिलक ने जो उद्गार निकाला उसे दत्तचित्त होकर पढिये और मनन कीजिये कि तिलक कैसे दूरदर्शी गम्भीर और असाधारण पुरुष है " जुरीने यद्यपि मुझे अपराधी ठहरायाहै तो भी मेरा मन गवाही दे रहा है कि मैं पूर्ण रूपेण निर्दोषी हूं। ईश्वर का ऐसा मनोगत सङ्केत दिखाई पडता है कि मैंने जिस देशहित कार्य को अङ्गीकार किया है वह मेरे दुःख और सङ्कटों से ही अधिक वृद्धि को प्राप्त हो "

तिलक को कालापानी होगया इस खबर के फैलते ही मनुष्यों पर उदासी छागयी सैंडोंक हजारों दुकानें बन्द होगईं बाजारों में एकदम सन्नाटा छागया मकानों पर कालेझंडे फहराने लगे

मिलों के हजारहों मजदूर अपना २ काम छोड़कर तिलक वियोगजन्य शोक में सिड़ी के समान इधर उधर घूमने लगे बस इतनाही कहना बहुत समझते है तिलक के शोक में एक दिन नहीं कई दिन बम्बई की बड़ी ही बुरी दशा रही। बम्बई ही क्यों भारतवासी मात्र को तिलकवियोग का दुःख हुआ है। हमारे परिचित हरदुआगंज [अलीगढ] निवासी कविवर पं० नाथूरामशंकरशर्मा ने तिलक वियोग रूपीदुख को इसप्रकार वर्णन किया है।

शोक महासागर में जीवन जहाज आज, भारत का डूबेगा रही न बात बपकी। धारती है भार तीसकोटि मन्द भागियों का, हाय! हाय! मेदिनी तू नेक भी न धसकी॥ टूटगया शंकर अखण्ड उपदेश दण्ड दिव्य देशभक्ति की पताका हाय खसकी तिलक वियोगविप बरस रहा है अब' सुकवि न चरचा करेंगे नवरस की॥ पाठकवृन्द! लोकमान्य तिलक पर भारत वासियोंका ऐसा अतुल अगाध प्रेमदेखकर हमारी सर्कार ने तिलक महाराज की छः वर्ष की काले पानी की सजा बदलकर सादी करदी और साबर बती के जेलसे निकालकर उन्हे ब्रह्मदेश के मण्डाले की जेलमें आराम के साथ रखने की आज्ञा देदी है महात्मा तिलक इस विपदशामें भी भारतवासियों के उपकारार्थ "गीताकार्नीति शास्त्र॥ नामक ग्रन्थ लिखरहे हैं? धन्य तिलक! क्या भारत वासियों का छोटे से छोटा बच्चाभी आप के इन उपकारों से उऋण हो सकता है? हा तिलक?

उपकारमेव तनुते विपद्गतः सद्गुणो महताम्।
मूर्छां गतो मृतो वा निदर्शनं पारदोऽत्ररसः॥

॥ श्रीहरिः ॥

* लाला लाजपत राय *

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पल कोमलम् ।
आपत्सु च महाशैल शिलासंघात कर्कशम् ॥

भारतवर्ष में समय समय पर वड़ेवड़े महात्मा विद्वान् परोपकारी जन्म लेकर अपने तन, मन, धन, से पृथ्वी की दुःख स्थित को सम्हालते रहेहैं परन्तु जबतक लोगों के दुःखोंसे द्रवीभूत होकर ईश्वरकी करणा उत्पन्न नहीं होती तव तक वैसे महत्पुरुषों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ करता । वर्तमान समय में भारतवर्षको दुर्भिक्षप्लेग आदि जैसे हृदयविदारक दुःखों से सामना करना पड़ रहाहै वह अनिर्वचनीय है। हमारे लाला लाजपतराय भी भारत के दुःखों को दूर करने की चेष्टा करने वालों में एक प्रधान और गण्य पुरुष हैं । भारतवर्ष ! तुझमें यह वड़ा भारी दोष है कि जबतक तेरे पास कोई अमूल्य रत्न रहता है तवतक तू उसकी कीमत नहीं समझता । तेरी गोद में बड़े बड़े महात्मा होते हैं बड़े बड़े सपूत होते हैं और तू उनके गुणों की कदर नहीं करता, और पीछे समय निकल जाने पर उनका महत्व समझता है । क्या तू लाला लाजपतराय को देश निकाला होनेसे पहले भी उनके गुणोंका ऐसा आदर करता था ! याद रख ईश्वर की ऐसी विभूति किसी देश को बारम्बार नहीं मिलती है ।

पञ्जाव केसरी श्रीमान् लाला लाजपतराय का शुभजन्म

सन् १९६५ में लुधियाना प्रान्त के जरगांव नामक छोटी वस्ती में हुआ है आप अग्रवाल वैश्य हैं। इनके पिता लाला राधाकृष्णदासजी सरकारी स्कूल में उर्दू और फारसी के शिक्षक थे। वृद्ध होने पर भी देशहित कामों में योग देतेरहते हैं आप उर्दू के जोरदार लेखक हैं। जब सर सय्यद अहमदखांने कांग्रेस के विरुद्ध एक लेख लिखकर नाहक लोगोंको भ्रम में डालना चाहाथा तब उसके प्रतिवाद में लाला राधाकृष्ण दास ने कोहेनूर नामक उर्दू समाचार पत्र में क्रमशः कई प्रभावशाली पत्र छापे थे। जिनका कि अंगरेजी अनुवाद छपवा कर लाला लाजपतराय ने इलाहाबाद कांग्रेस के समय प्रकाशित किया था। लाला लाजपतराय की माता भी साधारण स्त्री नहीं थी वह गृहकार्य में चतुर बुद्धिमती परम आस्तिक और परोपकारिणी थी। स्त्रीसमाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। स्वयं लालाजी भी अपनी माता के गुणों की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से किया करते हैं। कहिये पाठक! ऐसे पिता माता के होते हुए लाजपतराय जैसे सुपात्र पुत्र होने में आश्चर्य ही क्या (आत्मा वै जायते पुत्रः) आप बालकपन से ही परम सुशील बुद्धिमान् और विद्यानुरागी थे। जिस समय ये गवर्नमेन्ट कालेज लाहौर में पढ़ते थे उस समय आपको सरकारी वजीफा मिलता था। कमजोर और गरीब होनेपर भी अठारह वर्ष की उम्र में कानून की प्रथम परीक्षा में पास होकर आप हिसार जिले में वकालत करने लगे। दो वर्ष के भीतर आपने वकालत की अन्तिम परीक्षा में भी पासकर लिया सन् १८९२ ईस्वी तक आपने हिसार में ही वकालत की वहांपर ये प्रधान और सर्वमान्य म्युनिसिपल कमिश्नर गिने जाते थे। इसके बाद आप

लाहौर के चीफकोर्ट में जाकर वकालत करने लगे यहांपर थोड़ेही से दिनों में खूब प्रसिद्ध होगये। सन्१८९२से१९०२ इस्वीतक दसवर्षमें बडा यश और धन पैदा किया। सन् १९०२ से आप सार्वजनिक कामों में भी भाग लेने लगे। १७ वर्ष की अवस्था से ही आप आर्य्यसमाजी होगये थे। आर्य समाज की उन्नति के लिये भी आप सर्वदा चेष्टा करते रहते थे दयानन्द एंग्लोवैदिक स्कूल और कालेज लाहौर को उन्नत करने में आपने बड़ा परिश्रम किया यही नहीं किन्तु द्रव्यकी भी सहायता दी। दस बारह वर्ष उक्त कालेज के सेक्रेटरी रहे हैं कुछ दिनों अवैतानिक अध्यापक भी रहेहैं। लाहोर आर्य्यसमाज की कार्यकारणी सभा के सभासद रहकर आपने आर्यसमाज का बडा उपकार किया है। फीरोजपुर में हिन्दू वालकों का एक बडा अनाथालय है उसके आप कई वर्षोंतक जनरल सेक्रेटरी रहेहैं। सन् १८९७ और १८९९ में अकाल के समय अनाथ बालकों की रक्षा कर अच्छा सुयश प्राप्तकिया आपके सुप्रबन्ध से २००० अनाथों की सहायता हुईथी। दुर्भिक्षके समय आर्यसमाज के दूसरे कई मेम्बरों के साथ लाला लाजपतराय ने दुर्भिक्ष पीडित बहुतेरे मनुष्यों को मिशनारियों के फन्दे से बचाया अतएव मिशनरी (ईसाई) लोग अवतक आपको बडी वक्र दृष्टिसे देखते हैं। कांगडे में जब भयानक भूकम्प हुआथा तब आपने आर्यसमाज की ओर से उन भूकम्प पीडित मनुष्यों की सहायतार्थ चन्दाकर बहुतसा द्रव्य एकत्रित किया और स्वयं वहां जाकर उन पीडित मनुष्योंकी बडी देख रेख के साथ सहायता की। क्यों नहो बिना कारण प्राणिमात्र पर दयाकरना देशहितैषियों का प्रधान कर्तव्य है ॥

(अपेक्षन्ते न च स्नेहं न पात्रं न दशान्तरं । सदालोक हिता सक्ता रत्नदीपा इवोत्तमाः) आपने ऐसे २ अनेक कामों के करने के सिवाय देश में धन और उद्यम बढ़ाने की भी पूर्ण चेष्टा की । आप पञ्जाब के नेशनलबंक के तथा कपास और सूतकी कंई मिलों के डाइरेक्टर हैं और इन मिलों से आपका घनिष्ट सम्बन्ध है । आप अंगरेजी के ही पूर्ण ज्ञाता हैं सो नहीं आप उर्दू पञ्जाबी और देशभाषा नागरी भी जानते हैं। आप हिन्दीभाषा पर बड़ा प्रेम रखते हैं । आप देशके उपकारार्थ समाचार पत्रों में उत्तम २ लेखभी देते रहते हैं आपने उर्दू में इटली के स्वतन्त्रकर्ता प्रसिद्ध मेज़िनी, गेरीबाल्डी, दयानन्द, शिवाजी, और भगवान् श्रीकृष्ण के जीवनचरित्र लिखकर देशका बहुत कुछ उपकार किया है । आपका मतहै कि " देशभक्ति " भगवद्भक्ति का मुख्य अंगहै । भारतीयप्रजा को अधिकारी वर्ग के कुप्रबन्ध से पीडित देखकर आपका हृदय तलमला उठा कांग्रेस के द्वारा इसका अच्छा उपाय हो सकेगा यह विचार कर आप सन् १८८८ में इलाहाबाद कांग्रेस में पहले पहल सम्मिलित हुए । तदनन्तर आप प्रतिवर्ष कांग्रेस में जातेरहे और पूरे उत्साह के साथ कांग्रेस का कार्य निर्वाह करतेरहे । कांग्रेस में अपनी विद्वत्ता, निर्भयता, और दूरदर्शिता से प्रख्यात हो जाने के कारण सन् १९०५ ईस्वी की कांग्रेस में हिन्दुस्तानियों के कष्टों का निवेदन करने के लिये इङ्गलैण्ड में प्रतिनिधि भेजना निश्चित हुआ, तो पञ्जाब से लाला लाजपतराय प्रतिनिधि चुनेगये । आप महर्षि मिस्टर गोखले के साथ साथ विलायतगये * उस समय आपको दृढ़ विश्वास

---

* इस यात्रा के समय इण्डियन एसोसिएशन ने जो आ-

था कि यदि दीन भारतबासियों के दुःख इंग्लेण्डवालों के सामने निवेदन किये जांयगे तो अवश्य ही क्रमशः दुःखों की निवृत्ति होगी। वहां जाकर आपने भारतकी दुर्दशाका भली प्रकार वर्णन किया प्रायः सभी योग्य २ स्थानों में व्याख्यान दिये परन्तु फल कुछ न निकला। तब आपको मालूम होगया कि इंग्लेण्ड में भारत के पक्षपाती बहुत ही थोड़े से सज्जन हैं सो भी उनकी अधिकारियों पर कुछ चलती नहीं। भारतवर्ष में जो अधिकारी और कर्मचारी हैं। वे अपनी इच्छानुकूल काम करते हैं। तब आपको यह भी निश्चय होगया कि यदि भारतवासियों का कल्याण हो सक्ता है तो अपने ही कर्तव्य से हो सक्ता है।

इस प्रकार इङ्गलेण्ड से हताश होकर आप अमेरिका वालों की स्वराज्य समृद्धि के अवलोकनार्थ अमेरिका पधारे। वहां रहकर अमेरिकावालों की पालिसियों को मनन कर बहुत कुछ उत्कृष्टज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर आप भारत को लौट आये इस समय से भारतवासी आप को कट्टर देशभक्त और पञ्जाव वासी अपना एक बड़ा नेता मानने लगे। यद्यपि आप इस से पहले भी अपना बहुत समय परोपकारी कामों मेंही दिया करते थे। परन्तु अमेरिका से लौटने पर देश हित साधन ही आपका मुख्य कार्य हुआ तभी से आप पर लोग अधिक श्रद्धा और प्रीति करने लगे। लाला लाजपतिराय की शारीरक व्यवस्था प्रायः अच्छी नहीं रहा करती आपका शरीर दुर्वल रहता है मन्दाग्नि रहती है और कुछ यकृत की खरावी भी रहती है।

पको २०००] रुपये दिये थे वो सब आपने विद्यार्थियों की सहायतार्थ देदिये। और यात्रा में निज का व्यय किया।

यदि आपका शरीर पूर्णतया स्वस्थ होता तो न मालूम आप कितना काम करते। तथापि आपने देश के लिये जितना कष्ट उठाया है जितना पराक्रम किया है उतना करना हंसी खेल नहीं है। लाला लाजपतराय भारत वर्ष के राज नैतिक लीडरों में जो अग्रगण्य लोग है उन में आप एक हैं। दृढ निश्चय, उद्योग, स्वार्थत्याग, आदि गुण उनकी नस नस में भरा हुआ है। प्रजा की ओर से सरकार से "स्वराज्य" के हक्क मांगने का उन में बडा जोश है। यों तो मनमाने देश भक्त और अगुआ बहुत से बन बैठे हैं। परन्तु यथार्थ में जन्म भूमि के सेवकों की दुखियों के नेताओं की, परोपकार वृत्ति धारण किये हुए महात्माओं की आपत्ति में परीक्षा होती है। देश के नेताओं के विकास का समय आपत्ति है क्योंकि सच्चे नेताओं को राज भय सदा उपस्थित रहता है। हमारे लाला लाजपतिराय इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो चुके हैं—९ मई सन् १९०७ को लाला-लाजपतिराय सन् १८१८ ई० के कानून की तीसरी धारा के अनुसार—जिस का यह आशय है कि ब्रिटिश सरकार अपनी और अपने आधीन राज्यों की रक्षा के लिये जिसे चाहे उसे बिना दोष लगाये कहीं नजर बन्द कैद कर दें, । दो बजे दिन के गिरफ्तार कर के लाहोर से मियांमीर और मियांमीर से स्पेशल गाडी में कलकत्ते और कलकत्ते से ब्रह्मदेश के मण्डाले के बडे जिले में कैद कर दिया। तदनंतर आपके साथ सहानुभूति प्रकाश करने के लिये तथा सरकार के इस अनुचित कार्य के प्रतिवाद करने के लिये अनेक नगरों में सभा हुई—नाना प्रकार से शोक प्रकाश किया गया—समाचार पत्रों में आन्दोलन हुआ परन्तु कुछ फल न निकला। अन्त में राजराजेश्वर

सप्तम ऐडवर्ड की जन्म तिथि के उत्सव के उपलक्ष में ठीक छः महीने के बाद ९ नवम्बर सन् १९०७ को आप जेल से निर्मुक्त किये गये। लाला लाजपतिराय जैसे देश हितैषी नेताके छूटने से भारत वासियों को जो अपार आनन्द प्राप्त हुआ उसे पाठक! स्वयं ही अनुभव कर सक्ते हैं। जेल से निर्मुक्त होने के बाद लालाजी ठीक पहले की भांति बल्कि और अधिक उत्साह के साथ देश सेवा में तत्पर हुए। इस समय आप लन्दन में हैं। गत अक्टूबर मास में जो वहां पर भारतवासियों ने एक भारी सभा की थी उस में आपने दक्षिण एफ्रिकावासी भारत वासियों के साथ सहानुभूति दिखाते हुए जोर के साथ कहा था कि दक्षिण एफ्रिका में जो हमारे भाइयों के साथ कठोर आचरण हो रहा है वह अंग्रेजी सभ्यता का नमूना है। कहां हैं वे लोग (पादड़ी) जो सार्वभौम भ्रातृत्व का सबक दिन रात हमारे देश में सुनाते हैं और हमारे भाइयों को गुलामों से भी बढकर कष्ट देते हैं? क्या अंग्रेजों के लिये खून बहाने का यही नतीजा है? धन्य लाला धन्य परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि आप की बड़ी अवस्था हो और आप सर्वदा देश के कल्याणकारी मार्ग का उपदेश करते रहैं॥

श्रीशः पातुवः

॥ बाबू बिपिनचन्द्रपाल ॥

यथाचित्तं तथा वाचो यथा वाच स्तथा क्रियाः ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूना मेक रूपता ॥

हमारी भारत भूमि जो रत्नगर्भा नामसे प्रसिद्ध है। वो केवल हीरा, पन्ना, नलिम आदि जवाहारात के होने से ही नहीं किन्तु अनेक नर रत्नोंके उत्पन्न होने के कारण ही यथार्थ में इसका रत्नगर्भा नाम होना ठीक है। भारत भूमिपर ऐसे अनेक वीर पुरुष जन्म ले चुके हैं जिनकी प्रशंसा से भारत के इतिहास का एक भी पृष्ठ खाली नहीं है। एसी दशामें यदि इस समय भी कहीं२ ऐसे पुरुष श्रेष्ठ जन्म लें तो आश्चर्य ही क्या! श्रीयुत बाबू बिपिनचन्द्र पाल भी एक अद्वितीय पुरुष हैं। आपका जन्म ऐसे समय में हुआ है जो समय भारतके इतिहास में बड़े महत्वका है। अ [illegible] सन् १८५७ के गदरका बलवा शान्त हो चुका तथा बलवे के दुःखसे दग्ध अन्तःकरणों को जब महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र रूप सुशीतल वारिने शान्त एवं प्रफुल्लित करदिया तब हमारे बिपिनचन्द्र का जन्म सिलहट जिले के [illegible] नामक ग्राम में हुआ है। यह जिला लार्ड कर्जन महोदय के किये हुए नवीन विभागमें है। इनके पिता बाबू रामचन्द्रपाल [illegible] नगर में अपनी बुद्धि और चतुरता से [illegible]। ये वहांके प्रसिद्ध वकीलों में सर्व [illegible]। हमारे बाबू रामचन्द्र पाल को एक नि- [illegible] तथा जब [illegible]। [illegible]

पद पर नियुक्त करदिया । बाबू बिपिनचन्द्र अपने पिताके एक मात्र पुत्रथे इसकारण इनको बडे स्नेह के साथ पालागया था। अधिक लाड चाव होनेपर भी इनकी पढने लिखने में स्वतै ही अत्यन्त प्रीतिथी । बहुत छोटी अवस्थामें ही आप मेट्रिक की परीक्षामें उत्तीर्ण होगये ॥

इनके पिता सिलहट के ओर पास इनके पढने का समुचित प्रबन्ध न देखकर बिपिन चन्द्रपाल को अपने साथ कलकत्ते ले आये । यहांपर इनकी पठन व्यवस्था की समुचित प्रबन्ध होगया । पालमहोदय को सभा सुसाइटियों में जानेका शौक संस्कारानुगत बाल्यावस्था सेही था । कलकत्ते में रहनेपर बाबू केशबचन्द्रसेन के व्याख्यानों का पालमहोदय के मन पर ऐसा व्यापक असर पड़ा कि वो तुरन्त ही ब्रह्मसमाज के नियमोंका पालन करने लगे । इस समय आपकी आयु केवल १८ वर्षकी थी ! अपने पिता तथा इष्टमित्रों द्वारा नाना प्रकारसे मनेरहने परभी इन्होने ब्रह्मधर्म को न छोड़ा इस कारण इनके पिता इन से अत्यन्त रुष्ट होगये । यहां तक कि अपना मृत्युपत्र लिखते समय स्पष्ट लिखदिया कि हमारे पुत्रको इस सम्पत्ति में से एक कौडीभी न दीजाय इतनी छोटी अवस्थामें दैवात् ऐसे बड़े संकट के उपस्थित होनेके कारण विपिनबाबू को अपना अभ्यास क्रम छोड़ना पड़ा ।

इन्होने ओडीसा के कटक नामक ग्राम में स्थानीय स्कूल के हेडमास्टर पद की नोकरी करली । परन्तु अफसोस से अपने पिताको खुश करने के लिये ब्रह्मसमाज से पृथक न हुए अथवा यों समझिये कि अङ्गीकार किये हुए तत्वों का परित्याग नहीं किया क्यों नहो [अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति]

जिस समय आपने कटक के स्कूल में नौंकरी की थी उस स-मय आपकी अवस्था २१ वर्षकी थी तीन वर्ष बराबर इसी पदपर काम किया। इसके अन्तर सिलहट में आकर इन्होंने एक स्वतन्त्र स्कूल खोला और अपनी जन्म भूमि के प्रान्त में सस्ती शिक्षा देने के लिये बड़ी कोशिस की-इतनाही क्या गरीब विद्यार्थियों को पारितोषक भी देने लगे। इस प्रकार इस महत्कार्य में धनव्यय तो बहुत होने लगा और आमदनी का कोई ठीक उपाय नहीं। तो भी विपिन बाबूने बड़े साहस के साथ पांच छः वर्ष तक इस कार्य को निभाया परन्तु अन्त में द्रव्याभाव से लाचार होकर इनको यह स्कूल बन्द करना पड़ा। इसके बाद आपने बेंगलोर में [रायबहादुर । आरकोट नारायणसिंह सस्थापित स्कूल में नौंकरी की यहां भी आप हेडमास्टर नियुक्त हुए। यहां पर इन्होंने एक ब्रह्म धर्म परिपालिका स्त्री से विवाह करलिया। विपिन बाबू की निश्चत तत्वों पर ऐसी दृढ़ भक्ति देखकर अन्त को इन के पिता को इन के ऊपर प्रसन्न होनाही पड़ा उन्होंने अपने प्रिय पुत्र विपिन को २५ हजार की सम्पत्ति का स्वामी बना कर स्वयं स्वर्ग का मार्ग ग्रहण किया-बेंगलोर स्कूल में दो वर्ष तक काम कर आप कलकत्ते आये यहां पर आप को कलकत्ता सिटी लायब्रेरी का लायब्रेरियन (अध्यक्ष) बनाया गया-इस सुअवसर में आपको अनेक उत्तम २ ग्रन्थ देखने को मिले अतः आप अनेक शा-स्त्रीयगढ़ूर विषयों के पूर्ण ज्ञाता होगये-इस प्रकार अतुल अ-निर्वचनीय ज्ञान सम्पन्न हो आप उच्चकार्यों में हाथ बढ़ाने को ही थे कि एकाएक आप पर भारी विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा अर्थात् इनकी प्राणाधिक पत्नी का स्वर्ग वास होगया-आपकी

प्रिय पत्नी की मृत्यु के अनन्तर आप एक प्रकार विरक्त से हो गये। विद्वान साधु महात्मा ओंका सत्संग ही इनको अधिक रुचिकर हुआ इस दशामें आपने वेदान्त शास्त्रके गूढ तत्वोंका ज्ञान प्राप्तकिया संस्कृत विद्या सीखी तथा सनातन वैष्णव धर्मके सिद्धान्तो का भी साधारण हालजाना। इसीप्रकार सभी प्रकार के विद्वानों के सत्संग से आपको भारत वर्ष की प्राचीन गरिमा और वर्तमान हीनदशाका भी भली भांति ज्ञान होगया। अनन्तर अपने निजी मित्रों के अधिक कहने और आग्रह करनेपर बाबू सुरेन्द्रनाथ नामक बंगाली की बिधवा भतीजी से पुनर्बिबाह करालिया। इसी स्त्रीसें आजतक आपके तीन पुत्र और चार पुत्री हुई हैं। जिस समय मृत्युप्राप्त कालीचरण बनर्जीने कलकत्ते के टाउन हाल में क्रिश्चियन [ईसाई] धर्मपर व्याख्यान देतेहुए ब्रह्मसमाज की निन्दा कीथी। उस समय श्रीयुत बाबू बिपिनचन्द्र पालने ब्रह्मसमाज की पुष्टिमें पाण्डित्य पूर्ण क्रमशः छः व्याख्यान देकर बाबू कालीचरण के घमण्ड को चूर्ण २ कियाथा। यद्यपि इन व्याख्यानों के पहले भी पाल महोदय अपनी बिद्या और बिलक्षण बुद्धिके लिये प्रसिद्ध थे। सन् १८८७ में कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन हुआ था उसमें विपिन बाबू ने हथियारों के विषयमें जो प्रभावशाली व्याख्यान दियाथा उससे बहुत लोगों पर उनकी अगाध पण्डिताई का प्रभाव पडचुकाथा तथापि इन छः व्याख्यानों से आपका यश बिशेष विस्तीर्ण होगया। मृत् मिस्टर केनके द्वारा संस्थापित टेम्परेन्स मंडल के आप ही बंगालभर में मुख्य प्रचारक थे। आपको पश्चिमी भिन्न भिन्न संस्थाओं के देखनेका बडा शौक था इनकी यह इच्छाभी सन् १९०० में पूरीहुई आ-

ऑक्सफर्ड की युनीटेरियन सोसायटी की तरफसे धर्मग्रन्थों का तुलनात्मक दृष्टिसे अभ्यास करने के लिये आप इँगलेण्डगये। आपने अपनी कुशाग्र बुद्धि और धारणा की उत्कृष्टता से दो वर्ष का अभ्यास एकही वर्ष में पूर्णकर अपने कालेजके प्रिन्सिपल का सार्टीफिकेट प्राप्त कर लिया। इसके अनन्तर जर्मन, फ्रान्स, और अमेरिका आदि देशों का प्रवास कर बहुत कुछ योग्यता प्राप्तकी। इसमें जो कुछ व्यय हुआ वो आपने धर्म सम्बन्धी व्याख्यान और पत्रोंमें लेख लिखकर उपार्जन किया॥

सन् १९०२ में आप भारतवर्ष को लौटआये यहां आकर आपने अपने मन के विचार प्रकट करने के लिये तथा वर्तमान आन्दोलन के शुरू करने के लिये "न्यूइंडिया" नामक पत्र निकाला आप स्वयं ही इसके सम्पादक रहे इस पत्र ने कैसी उन्नति प्राप्तकी देशको संभालने की कहांतक चेष्टा की वो सबपर विदित ही है। पांच वर्ष तक बड़े जोर शोर से इसने अपना कर्तव्य पालन किया परन्तु अचानक पालमहोदय के कैद हो जाने से यह पत्र भी अस्तहोगया लार्डकर्जन के द्वारा बंगाल खण्ड होने पर विपिन बाबू का हृदय भी खण्ड खण्ड होगया। इन्होंने लोगों में स्वदेशीग्रहण विदेशीवर्जन कराकर बंगाल भर में जो नवीन उत्साह उत्पन्न करदिया है वो किसी से भी छिपा नहीं है। सन् १९०६में जो कांग्रेस का बाईसवां अधिवेशन हुआ था उसमें मोडरेट (नर्म) एक्सट्रीमिस्ट (गर्म) इन दोनों दलों के आपसमें नर्मोंके अधिकपक्षमें माननीय दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में स्वदेशी, बहिष्कार राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य विचार प्रस्ताव पास हुए थे। और श्रीयुक्त दादा

भाई ने येंभी कहाथा कि आपलोग अन्यान्य नगरों, में जाकर इन बिचारों का प्रचारकरो। तदनुसार पालमहोदय ने मन्द्राज में जाकर उक्त विषयोंपर व्याख्यान देकर लोगों को उत्साहित किया। क्या किसीअगुआभिमानी नर्म ने भी इस प्रकार अपने प्यारेपूज्य दादाभाई की आज्ञा का परिपालन किया है ! बिपिनचन्द्रपाल सत्य के पूर्ण पक्षपाती हैं वो सत्यबात कहने में कभी भी नहीं हिचकते जिनलोगों ने इनके व्याख्यानों को सुना वा पढ़ाहोगा वो इसबात से भलीभांति परिचित होंगे। कुछसही परन्तु जिनकी कुछ कोर दबती हो वो एसे सत्य से क्यों प्रसन्न होनेलगे, उनके लिये तो "सच्चकहना आधी लड़ाई है" इस नियमानुसार कुछ अधिकारी इनपर कड़ीनजर रखने लगे। सन् १९०७ के सितम्बर मास में कलकत्ते के प्रसिद्ध अंगरेजी भाषा के दैनिक पत्र "वन्देमातरम्" पर राजद्रोह का मुकदमा चला। उसमें अधिकारीवर्ग ने बाबू बिपिनचन्द्र पाल की साक्षी (गवाही) लेने के अर्थ सम्मन निकाला यह देख लोग बिचारनेलगे कि इसमें बिपिन बाबू अवश्यही कोर्ट का बायकाटकर गवाही देने कदापि न जांयगे।

परन्तु आपने ऐसा न किया कोर्ट की मान रक्षा की और कोर्ट को गये परन्तु अपनी आत्मा के प्रतिकूल गवाही देनेसे साफ इन्कार करदिया—यदि वे चाहते तो 'मुझे यादि नहीं आता' इस सिद्ध मंत्र का सम्पुट लगा कर सहज में ही अपना पीछा छुटा लेते परन्तु सद सद्विवेक बुद्धि होते हुए भी इस मानसिक पाप करने का दोष उनको अवश्य लगता। इस लिये उन्होंने निषेध मार्गही श्रेयस्कर समझा—चीफ मजिस्ट्रेट मिस्टर किंग्स फर्ड ने आपको एकांत में लेजा कर बहुत कुछ समझाया पर

इन्होने वही उत्तर दिया (न निश्चितार्थाद्विरमन्ति पण्डिताः) इस प्रकार गवाही देने से निषेध करने पर मिस्टर किंग्सफर्ड ने इनके ऊपर कोर्ट अपमान करने का मुकदमा लगा कर इनका मुकदमा दूसरे मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया। उसने आपको छः महीने की सजा देकर अपने अतुलन्याय का परिचय दिया। आप की सजा के वारे में भूत पूर्व जज्ज सरगुरुदास चट्टोपाध्याय नें कहा है। विपिन बाबू को जो सजा हुई है वह बहुतही बड़ी है इस अपराध के लिये एक वा दो दिन की सजा काफी थी। पाठक! अब तो आप अच्छी तरह बिचार सक्ते हैं कि पाल महोदय को जो सजा दीगई वो योग्य थी वा अयोग्य। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि सुवर्ण को जितना तपाया जाता है उसकी उतनीही शोभा बढजाती है। नाम के लिये देश भक्त और राज भक्त कहलाने वाले अगुआ बहुत हैं परन्तु क्या किसी को भी इस मार्ग पर चलने का साहस हो सक्ता है? यथार्थ में जन्म भूमि की सेवा करने का दावा वोही व्यक्ति रख सक्ता है जो सच कहने में किसी बात का सङ्कोच न करे अपने निश्चित मार्ग से कदापि न हटे। आपत्ति में फसने पर भी अपने देश वासियों की भलाई की चिन्ता में मग्न रहे, समस्त कष्ट और दुःखों को पुष्पों की माला की तरह सानन्द धारण करे वही सच्चा देश सेवक है वही देश का अगुआ कहलाने का दावा रख सक्ता है। ऐसे देश सेवक बङ्गाल सर्वस्व बाबू विपिनचन्द्रपाल हैं। वह देश की इतनी सेवा कर चुके हैं कि उनका नाम राष्ट्रीय पक्ष के प्रधान तीन बड़े अगुआओं में (लाल, बाल, पाल,) बड़े सन्मान पूर्वक स्मरण किया जाता है ता. ९ मार्च सन् १९०७ को ये बक्सर जेल से छूटकर कलकत्ते

आये उस समय लोगों के आनन्द का पार न रहा हजारहां मनुष्यों ने बड़ी धूम-धाम से आप का स्वागत किया--दीपावली (रोशनी) की गई सभाएं हुई भजन कीर्तन हुए अधिक क्या मानों समस्त कलकत्ता विपिन बाबू के छूटने के आनन्द में उमड़ कर नाना प्रकार से इन का स्वागत कर रहा था । इस समय विपिनचन्द्र बाबू लन्दन में हैं सुना जाता है आप वहां से "स्वराज्य नामक अङ्गरेजी भाषा का मासिक पत्र निकालेंगे" गत अक्टूबर मासमें लन्दन में "दक्षिण एफ्रीकामें भारतवासी" इस विषय पर जो एक भारी सभा हुई थी उसमें पाल महोदय ने ट्रांसवालबासी भारत बासीओं के कष्टों पर शोक प्रकाश करते हुए कहा कि आज कल मिस्टर गांधी को वोरों की मातहती में गिट्टी फोड़नी पड़ती है। मिस्टर गांधी से मेरी पूर्ण सहानुभूति है कुछ हरज नहीं देश के लिये हमें क्या आपति न झेलनी होगी। अन्त में हम उस सर्वशक्तिवान् परमात्मा से येही प्रार्थना करते हैं कि आपको सदैव आरोग्य और चिरंजीव करें जिस्से देश दशा उत्तरोत्तर सम्हलती रहे ॥ *

महादेव्यैनमः ।

॥ बाबू अरविन्दघोष ॥

शरदिन वर्षति गर्जति वर्षासु निस्वना मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्यव ॥

संसार में विद्वान्, धनी, सत्यवक्ता, परोपकारी, धर्मात्मा, सन्तोषी, साहसीसभी प्रकार के मनुष्य पाएजाते हैं । परन्तु ऐसे महान्पुरुष विरलेही पाये जाते हैं कि जिंने यशकी इच्छा नहो । बान्धवो ? आज हम आपको ऐसेही एक असाधारण नररत्न के जीवन से परिचय कराते हैं जिसने अपना सर्वस्व जननी जन्मभूमिको समर्पित करदेने पर भी कभी अपने यशकी इच्छा नहीं की । कदापि अपने किये हुए देशोपकारी कार्यों की प्रसिद्धी नहीं चाही । ऐसेनामधन्य बाबू अरविन्दघोष हैं ।

आपका जन्म सन् १८७२ में हुआथा । आपके पिता का नाम श्रीयुत कृष्णधन घोष है आपरंगपुर में से व्हिलसर्जन पद पर काम करते थे ये बड़े दयालु और परोपकारी थे इनकी प्रियपत्नी अर्थात् अरविन्दघोष की माता ब्राह्मसमाज के भूत पूर्व अधिष्ठाता श्रीयुक्त राजनारायण बोस महाशय की पुत्री हैं । जो लोग बोस महाशय के गुणों से परिचित हैं वे कहा करते हैं कि बाबू अरविन्दघोष में अपने मातामह (नाना) के उत्तम गुण संक्रांत हुए हैं अरविंदघोष ने कुछ कालतक अपने पिता के निरीक्षण में विद्याभ्यास किया अनंतर वे सात वर्ष की ही अवस्था में इंग्लैण्ड भेजदिये गये । और वहांपर मैन्चेस्टर नामक नगर में एक पादरी के घर अरविंद के निवास और शिक्षा सम्बन्धि प्रबंध किया गया । बारहवें वर्ष

मे ये कालिज में भरती हुए वहांपर इनको स्कालरशिप [वज़ीफा) मिलने लगा । अठारह वर्ष की अवस्था में आप भारतीय सिबिलसबिस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । उत्तीर्ण छात्रों में इनका नम्बर ग्यारहवांरहा । इन्होने लेटिन और ग्रीक[यूनानी] भाषाओं में जितने उंचे नम्वर पाये थे उतने अद्यावधि किसी ने नहीं पाये । तथापि आप एकघोडे सवाधारीमें पास न होने के कारण सिबिलसर्विस में नहीं लिये । ईस्वर की माया बड़ी बिचित्र है वह असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव कर दिखाता है । मनुष्य जिसकी चिन्तना भी नहीं करसक्ता उँसीको परमात्मा पूरीतौर पर करदिखाता है कहा भी " अघटित घटितं घटयति सुघटित घटितानी दुर्घटी कुरुते । विधिरेव तानि घटयति यानिपुमान्नैव चिन्तयति ॥

पाठको ! यदि घोषमहाशय सिबिल सर्विस में लेलियेजाते तो क्या भारतबासियों को आपके किये हुए उपकारों का सौभाग्य प्राप्तहोता ! आपके विद्वत्तापूर्ण देशोपकारी लेख पढने को मिलते ! आपके सुधामयं व्याख्यानों सें कर्ण पबित्र होते ! कदापि नहीं यह ईश्वर की कृपाकाही फलहै । यदि वे सिबिल सर्विसमें लेलियेजाते तो अवश्य कहीं के कलेक्टर वा जज्ज होते ॥

उक्त परीक्षा देनेके अनन्तर आपने केम्ब्रिज युनीवर्सिटी के किङ्स कालेजमें प्रवेश कर केवल दोवर्षो में क्लासिकल ट्राईपस की परीक्षा पासकी । उन्ही दिनों मेंही बडोदे के महाराज श्री सयाजीराव गायकवाड से इनका परिचय हुआ महाराजा साहिब इनसे एसे प्रसन्न हुए कि इनको बडोदा सिबिल सर्विस में नियुक्त करके अपने अमात्य [प्राईवेट सेक्रेटरी] पदपर प्र-

निश्चित किया । आपने भी बडीही योग्यता के साथ इस कार्य को निबाहा । अनन्तर महाराजने विद्यादान में इनकी अधिक अभि रुचि देखकर इनको अपने कालिज का वाइस प्रेन्सिपल नियुक्त करदिया । इसपद पर आपको ७००) रुपा मासिक वे-तन मिलता था । आपका विवाह पूर्व बङ्गाल और आसामके लैंडरेकोर्डस और एग्रिकलचर के डाइरेक्टर राय भूपालचन्द्र बोस बहादुर की पुत्रीसे हुआहै । अरविन्द महोदय के एक भाई कुचबिहार महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी तथा दूसरे कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालिज में अध्यापक हैं । आप बडे आनन्द और उत्साह के साथ बडौदा कालेजमें विद्यादान कर रहेथे । कि एकाएक बंग विच्छेद से प्रादुर्भाव हुआ स्वदेश भक्ति का भाव बंगाल में उमड पडा । जिस प्रकार और और देशके मनुष्य अपनी उन्नति अपने हाथ समझते हैं उसी प्रकार हमको भी उन्नति की चेष्टा करनी होगी यही भाव प्रत्येक बंगदेशी के हृदयंगम होगया । ऐसे समय में उन्होंने सुनाकि बंगालमें राष्ट्रिय शिक्षा परिषद के लिये एक उपयुक्त अध्यापक की आवश्यकता है बस अरविन्द महोदय देशसेवा की प्रबल प्रेरणा से प्रेरितहो भागे ।

इनके नाम वारन्ट निकलवादिया। ज्योंही इनको पता लगा कि मेरे नाम वारन्ट निकलाहै तत्काल अपने आप थानेमें जा हाजिर हुए। पुलिस और मजिस्ट्रेट की लाख लाख चेष्टा करने परभी अरबिन्द घोष सम्पादक प्रमाणित न होसके पुलिस अपनासा मुंह लिये रहगई। अरबिन्द बेलाग छूटगये। अरबिन्द महाशय अंगरेजी के ऐसे सुलेखक हैं कि जिनकी भावपूर्ण अंगरेजी और लेखों की योग्यताकी लण्डन " टाइम्स " ने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा कीहै। पश्चात् विद्याओंमें जैसी अरबिन्द बाबू योग्यता रखते हैं वैसी दूसरा कोई राजनीतिज्ञ नेता नहीं रखता। आपकी विद्या, बुद्धिधारणा, दूरदर्शिता, विचार ऐसे महत्वपूर्ण हैं कि यदि आपका जन्म अमेरिका अथवा फ्रान्स में होता तो आपको प्रेजिडेन्ट का पद मिलना भी कुछ कठिन नहींथा यदि अंग्रेजभी होते तोभी प्रधान मन्त्री पद तो अवश्यही मिलता। परन्तु भारत के दुर्भाग्य वश जो पद आपको मिलरहा है। उसे आप लोग अच्छी तरह जानतेही होंगे॥

आप ऐसे निरहंकार और शान्तपुरुष हैं कि आपको कभी प्रसिद्ध होने की इच्छा नहीं हुई ये चुपचाप राजनैतिक काम करते रहते थे। बाबू बिपिनचन्द्रपाल को छः मास की सजा होजाने पर अगत्या आपको राष्ट्रीय पक्षके नेताके स्थानपर बैठना पडा। तभीसे कुछ लोग आपके आच्छादित गुणों को प्रकाश रूप में देखने लगे। बाबू अरबिंद घोष॥

अनाश्रितं कर्म फलं कार्यं कर्म करोतियः।
स सन्यासी स योगीच न निरग्नि र्नचाक्रियः॥

इस गीतावाक्य के अनुसार ठीक निष्काम योगी है। बाबू अरबिन्दघोष सात वर्ष की अवस्था से ही इंग्लैण्ड में रहे

पादड़ी के घर पले, अंगरेजों के साथ पढ़े, अंगरेजी की ही शिक्षापाई अंगरेजी धर्म का ही उपदेश सुना तथापि आपको स्वधर्म और स्वदेश में जैसी अगाध प्रीति है वैसी बिरलों में ही पाईजाती है जो भारतीय नवयुबक थोडीं सीं अंगरेजी पढ़तेंही अपने धर्म और अपने पूर्वजोंके माहात्म्यको तिलाञ्जलि देकर हेट कोट पतलून पहनकर नकली जंटिलमैन बननें में ही अपने को कृतार्थ मानते हैं । वोभी बाबू अरविंदघोष के इस चरित्र से शिक्षालें। घोषमहोदय संस्कृत न जानने के कारण यद्यपि भारतीय विद्याओं के ज्ञाता नहीं है तथापि आपने धर्मके ऊंचे२ तत्वों को भली भांति समझ लिया है।भारतवर्षकीप्रजाके दुःखों को दूरकरने की चेष्टा कर उसको सुख पहुंचाना ही आप अपना परमधर्म मानते हैं । आपका बिस्वास है कि ईश्वर को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम येही उपाय है ।

इस समय अरविंद महोदय बमबखेड़े के अभियोग में गिरफ्तार हैं । परमात्मा ऐसी कृपाकरें कि आप शीघ्र उस झगड़े से निर्मुक्त होकर लोकोपकार में प्रवृत्तहों । जगदीश्वर क्या न अपने भक्तों को कठोर कष्ट देकर परीक्षा करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं जानता ।

※ भगवत्यैनमः ※

॥ चिदम्बरं पीले ॥

वदनं प्रशादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां नते वन्द्याः ॥

चिरकाल से भारत की दशा बिगड़ती आरही है-यहां ऋषि मुनि नहीं रहे हैं शूरबीर भी विरले हैं, यह ठीक है। परंतु कोई कहै कि अब भारतवर्ष में विद्वान् साहसी देश हितैषी दूर दर्शी उत्पन्न ही नहीं होते यह बात बिलकुल असत्य है-सज्जनों भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है वह कई प्रान्तों में विभक्त है प्रत्येक प्रांत की भाषा (बोल-चाल) अक्षर रहन सहन सभी निराले हैं इस कारण एक प्रांत बासी दूसरे प्रांत वासियों से सब प्रकार अपरिचित रहते हैं-हां समाचार पत्रों की कृपा से समय समय पर दूर बासी महात्मा विद्वानों का परिचय मिलता रहता है परन्तु हमारे करोड़ों देश भाइयों मेंसे कितने ऐसे होंगे कि जों समाचार पत्रों को पढ़ते हों! पाठक गण! मदरास प्रांत हमसे बहुत दूर है आज हम वहीं के एक विद्वान् महात्मा चिदम्बरं-पिले महोदय का जीवन चरित्र आपके समीप उपस्थित करते हैं यह वह देशभक्त पुरुषों पुङ्गव हैं कि जिन्होंने आज कल राज कर्म चारियों की ओर से मिलने वाले हमारे स्वदेश भक्तों के दण्डों में सब से अधिक दण्ड पाया है। अधिकारी हाकिमों ने चिदम्बरं पीले को घोर राजद्रोही समझा है-तूतीकोरन की कोरल मिल में हड़ताल, तूतीकोरन और तिनवली में दंगा फिसाद, पुलिस का जुल्म, तिनेवली में पुलिस द्वारा नर हत्या

आदि जो विषम काण्ड गत वर्ष मदरास प्रांत में हो चुके हैं। उन सबके होनेका कारण हाकिमों ने चिदम्बरं पीले महोदय के प्रभावोत्पादक व्याख्यानों कोही समझा है। और इसी कारण हत्यारे डाकुओं के भोगने योग्य आजन्म (बीस–वर्ष) काला पानी जैसी सजा सुप्रसिद्ध वकील चिदम्बरं पीले को मिलचुकीहै।

मदरास मार्तण्ड श्रीमान् चिदम्बरं पीले महोदय का शुभ जन्म सन् १८७३ ईस्वी में तूतीकोरन के निकटवर्ती ओतापिदरं नामक ग्राम में हुआ है। आप के पिता एक बहुत छोटे जिमींदार थे पीले महोदय बाल्यावस्था सेही अपने शील और गुणों से अपने ग्राम में सबको बड़े प्यारे थे आप अन्य बालकों की तरह पढने लिखने में अधिक छल बल नहीं करते थे–छोटी कक्षाओं का अध्ययन कर आप तूतीकोरन चले गये–वहां पर आपने एन्ट्रेंस पास किया इसके अनन्तर आपने (विकालत) की परीक्षा में पास किया और अपने जन्म ग्राम मेंही विकालत करने लगे क्यों कि इनका ग्राम एक ताल्लुका कहलाता है वहांपर सब मजिस्ट्रेट की अदालत भी है।

चिदम्बरं पीले के एक द्वितीय विवाहिता १८ वर्ष की स्त्री और एक ४ वर्ष तथा दूसरा १ वर्ष के दो बालक हैं इन अनाथ जीवों के पालन पोषण का भार इस समस्त भारतवासियों के ऊपरही निर्भर है यदि कोई सज्जन कुछ सहायता किया चाहें तो [illegible] श्री [illegible] वी.ओ.चिदम्बरं पीले की [illegible] तूतीकोरन .. इस पते से भेजसकते हैं]

[illegible], [illegible] [illegible], [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] हुए हैं, तदनुसार [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] थे। [illegible]

महोदय ने उस के मूल धन की उन्नति के लिये जगह जगह जाकर स्वदेशीके व्याख्यान दे-देकर लोगोंके चित्तों को कम्पनी की ओर खींचा। इस समय कम्पनी १००००००) दस लाख रुपे से बड़ी उत्तमता के साथ काम चला रही है। उसने भाड़ा बहुत घटा दिया है जिससे मदरास बासियों को बड़ा सुबीता होगया है। पाठक! इस कम्पनी का नाम है " स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कम्पनी तूतीकोरन–मदरास" इस कम्पनी के २५ पच्चीस रुपे के ४० हजार हिस्से रखे गये हैं बड़े बडे रहीस और प्रतिष्ठित लोग इसके डाईरेक्टरहै। इस कम्पनीके उद्देश्य ये हैं– तूतीकोरन से कोलम्बोतक और दूसरे उन बन्दर गाहों में जहां स्वदेशी स्टीमर नहीं है जहाज चलाना, भारत बासियों को सीलोन निबासियों तथा दूसरे एशियाइयों को स्कूल स्थापित करके जहाज बनाने और चलाने की विद्या सिखाना, व्यापार और जहाजके इन सब कामोंमें एकता फैलाना. स्वदेशी बस्तु प्रचार का उद्योग करना आदि। पीले महोदय का बिश्वास है कि मैं इस कम्पनी के कारण ही विलायती जहाज कम्पनी का चक्षूशूल बना। अपील करने पर चिदम्बरं पीले की २० वर्ष काला पानी की सजा घटकर अब ६ वर्ष की रहगई है। सुना जाता है कि प्रवी कौन्शिल में भी आप की अपीलकी जायगी। परमात्मा से प्रार्थना है कि उसका फल चिदम्बरं पीलेके अनुकूल हो जिससे भारत बासियों के सतप्त हृदय प्रफुल्लित हों॥

* श्रीरामचन्द्र *

॥ बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ॥

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा ।

संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

बंगाल के सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीमान् बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से हमारे पाठक भली प्रकार परिचित होंगे। आप अपने अनेक सद्गुणों से बहुत कुछ प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं—आप का जन्म सन् १८४८ में परम पवित्र ब्राह्मण वंश में हुआ है। आप के पिता कलकत्ते के नामी डाक्टर दुर्गाचरण बनर्जी थे—आप अपने पिता के पांच पुत्रों में से द्वितीय पुत्र हैं। इन्होंने पहले पहल डवीटिन कालेज में शिक्षा पाई और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में एन्ट्रेन्स में फर्स्ट पास हुए। सन् १८६६ में आपने बी. ए. पास किया इस समय आपकी अवस्था लगभग १९ वर्ष की थी। डिवीटिन कालेज के प्रिंसपिल ने सुरेन्द्रनाथ की बुद्धि विशालता देख कर इनके पिता बाबू दुर्गाचरण बनर्जी से कहा कि मेरी राय में सुरेन्द्र को विलायत भेजकर सिविल सर्विस में पास कराना चाहिये। बाबू दुर्गाचरण ने तथास्तु कह कर सन् १८६८ में सुरेन्द्रनाथ को विलायत भेज दिया। वहां

महोदय ने उस के मूल धन की उन्नति के लिये जगह जगह जाकर स्वदेशीके व्याख्यान दे-देकर लोगोंके चित्तों को कम्पनी की ओर खींचा। इस समय कम्पनी १०००००) दस लाख रुपे से बड़ी उत्तमता के साथ काम चला रही है। उसने भाड़ा बहुत घटा दिया है जिससे मदरास बासियों को बड़ा सुबीता होगया है। पाठक! इस कम्पनी का नाम है "स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कम्पनी तूतीकोरन–मदरास" इस कम्पनी के २५ पच्चीस रुपे के ४० हजार हिस्से रखे गये हैं बड़े बडे रहीस और प्रतिष्ठित लोग इसके डाईरेक्टरहै। इस कम्पनीके उद्देश्य ये हैं– तूतीकोरन से कोलम्बोतक और दूसरे उन बन्दर गाहों में जहां स्वदेशी स्टीमर नहीं है जहाज चलाना, भारत बासियों को सीलोन निबासियों तथा दूसरे एशियाइयों को स्कूल स्थापित करके जहाज बनाने और चलाने की विद्या सिखाना, व्यापार और जहाजके इन सब कामोंमें एकता फैलाना. स्वदेशी बस्तु प्रचार का उद्योग करना आदि। पीले महोदय का बिश्वास है कि मैं इस कम्पनी के कारण ही विलायती जहाज कम्पनी का चक्षुशूल बना। अपील करने पर चिदम्बरं पीले की २० वर्ष काला पानी की सजा घटकर अब ६ वर्ष की रहगई है। सुना जाता है कि प्रवी कौन्शिल में भी आप की अपीलकी जायगी। परमात्मा से प्रार्थना है कि उसका फल चिदम्बरं पीलेके अनुकूल हो जिससे भारत बासियों के सतप्त हृदय प्रफुल्लित हों॥

* श्रीशम्वन्दे *

॥ बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ॥

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा ।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

बंगाल के सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीमान् बाबूसुरेन्द्रनाथ बनर्जी से हमारे पाठक भली प्रकार परिचित होंगे। आप अपने अनेक सद्गुणों से बहुत कुछ प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं—आप का जन्म सन् १८४८ में परम पवित्र ब्राह्मण वंश में हुआ है। आप के पिता कलकत्ते के नामी डाक्टर दुर्गाचरण बनर्जी थे—आप अपने पिता के पांच पुत्रों में से द्वितीय पुत्र हैं। इन्होंने पहले पहल डेवीटिन कालेज में शिक्षा पाई और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में एन्ट्रेंस में फर्स्ट पास हुए। सन् १८६६ में आपने बी. ए. पास किया इस समय आपकी अवस्था लगभग १९ वर्ष के थी। डिवीटिन कालेज के प्रिंसपिल ने सुरेन्द्रनाथ की बुद्धि विशालता देख कर इनके पिता बाबू दुर्गाचरण बनर्जी से कहा कि मेरी राय में सुरेन्द्र को विलायत भेजकर सिविल सर्विस में पास कराना चाहिये। बाबू दुर्गाचरण ने तथास्तु कह कर सन् १८६८ में सुरेन्द्रनाथ को विलायत भेज दिया। वहां जाकर बाबू सुरेन्द्रनाथ यूनीवर्सिटी कालेज में दाखिल हुए उन दिनों भारतके वर्तमान स्टेटसेक्रेटरी (प्रधान मंत्री) मिस्टर जानमार्ले प्रधान अध्यापक थे आपने इन्हीं महोदय से शिक्षा प्राप्त कर सन् १८७० में सिविल सर्विस की परीक्षा पास की। खेद का विषय है कि आप के पिता बाबू दुर्गाचरणजी इस हर्ष समाचार को न सुन सके क्यों कि बाबू दुर्गाचरणजी सुरेन्द्रनाथ के पास

होने के तार आने से एकही दिन पहले स्वर्गबास कर चुके थे परीक्षा पास होने के अनन्तर आप सिलहट जिले के असिष्टेन्ट मजिस्ट्रेट होगये। बाबू सुरेन्द्रनाथ उक्त पद पर २ वर्ष भी काम नहीं करने पाये थे कि अचानक आप पर एक संकट का पहाड़ आ टूटा। वह यह है कि आपने भूल से एक मुकदमा 'फरारी' में बिना चढाएही अपने दस्तखत करके मुलाजिम के नाम वारंट निकालदिया। इसी अव्यवस्था पर आप पर मुकदमा कायम हुआ बाबू सुरेन्द्रनाथ ने अपने इजहार में जो सत्य बात थी वोही स्पष्ट कहदी कि हमने जान कर ऐसा काम हर्गिज नहींकिया। और २ कागजों के साथ यह भी हमारे सामने दस्तखतों के लिये लाया गया हमने नियमानुसार दस्तखत कर दिये। आप के इस कथन पर सरकार को विश्वास न हुआ। अधिकारी वर्ग ने छोटे बड़े १४ अपराध आपके ऊपर लगाये। कमिश्नरों की दृष्टि में बाबू सुरेन्द्रनाथ अपराधी निश्चित हुए। भारत सरकार ने श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ को सिर्फ ५०) रुपया मासिक पेन्शिन रूप में देकर सरकारी नोकरी से मार्च सन् १८७४ में बिलकुल पृथक् कर दिया। बाबू सुरेन्द्रनाथ ने इतने भारी संकट उपस्थित होने पर भी अपने धैर्य को न छोंड़ा। आप फिर विलायत गये और वहां जाकर अपील की परन्तु फल कुछ न निकला—अनन्तर आप ने वेरिस्टरी की परीक्षा देनी चाही परन्तु पूर्वोक्त अपराधों के कारण आप वेरिस्टरी की परीक्षा मे भी शामिल न हो सके। अनन्तर निराश हो भारत को लौट आए! यहां आकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के कथनानुसार आप सन १८७६ में मेट्रपालिटन इन्स्टिट्यूशनमें अध्यापक होगये २००) रुपया मासिक वेतन मिला। कुछ ही दिन

ाद एक " सिटीस्कूल " खुला ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की च्छानुसार आप यहां भी विद्यादान करने लगे। सन् १८८१ ं " मेट्रपालिटन इंस्टिट्यूशन " स्कूल से सम्बंध परित्याग कर आप " फ्रीचर्च कालिज " में पढाने लगे परंतु सिटीस्कूल को न छोड़ा। पढाने की पद्धति, शिष्यों पर प्रीतिव्यवहार, और शिक्षादायक उपदेशों से विद्यार्थी लोग बाबू सुरेन्द्रनाथसे बड़े प्रसन्न रहते थे। सन् १८८२ में आपने निज का स्कूल खोला परमात्मा की कृपा और आपके सद्गुणों से इस स्कूल ने थोडेही दिनों मैं इतनी तरक्की पाई कि उसमें २००० दो हजार विद्यार्थी पढ़ने लगे और " रिपिन कालेज " के नाम से प्रसिद्ध होगया। सन् १८८८ में बङ्गाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बहादुर ने " रिपिन कालेज " का निरीक्षण करते हुए उक्त कालेज और बाबू सुरेन्द्रनाथ के इस उद्योग की बडे अच्छे शब्दों में प्रशंसा की थी। अनन्तर बाबू सुरेन्द्रनाथ महोदय ने इस कालेज की दो शाखें एक खिरदपुर और दूसरी हवडा में स्थापित की। इन तीनों स्कूलों में प्रायः साडे तीन हजार छात्र विद्याभ्यास करते हैं। कहिये पाठक! यदि बाबू सुरेन्द्र-नाथजी सरकारी नोकरी से अलहदे न होते तो इतना भारी देश का उपकार किस प्रकार होता? कुछ समय से कलकत्ते से " बङ्गाली " नामक अंगरेजी साप्ताहिक पत्र निकलता था जिस के मालिक बाबू बेचारामजी थे। बाबू सुरेन्द्रनाथजी ने इस पत्र की पूर्ण उन्नति न देखकर इसके सम्पादन करने की स्वयं इच्छा प्रकट की। बाबू बेचारामजी ने सहर्ष " बंगाली " का सब अधिकार बाबू सुरेन्द्रनाथजी को समर्पित कर दिया। इस समय बंगाली के सिर्फ १०० सौ ग्राहक थे परंतु बाबू

सुरेन्द्रनाथजी के सम्पादन काल में थोडे ही दिनोंमें १४ हजार ग्राहक होगये ।

व्याख्यान देना, अखबार का सम्पादन करना, कालेजमें पढ़ाना, म्युनिसपलटी का काम देखना, आदि कतिपय भारी२ कार्मों को एकसाथ करना क्या सहज बात है ! नहीं उपरोक्त भारी २ कार्मों का पूरी तौर,पर निर्वाह सुरेन्द्रनाथ जैसे उत्साही विद्वान् द्वारा ही हो सक्ता है बाबू सुरेन्द्रनाथ एक पुराने राजनैतिक आन्दोलनकर्ता है आपका बंगाल में पूरा आदर होता है । वहां की शिक्षित समाज में आप के व्याख्यानों का अच्छा असर पड़ता है । सन् १८८३ में आपको एक और भारी विपत्ति से सामना करना पड़ा । वह यह कि कलकत्ता हाईकोर्ट के एक मुकदमे में भगवान् शालग्रामजी की मूर्ति नजीरके माफिक अदालत में लाईगई, ये हाल" बूह्मपबलिक ओपनियन" पत्र में प्रकाशित हुआ । इस समाचार को सत्य समझ कर बाबू सुरेन्द्रनाथ ने अपने " बंगाली " पत्रमें आलोचना की और हाईकोर्ट के जज्ज जस्टिस जानपली मेंटल नौरिस के विषयमें भी लेख लिखा । इस कारण उपरोक्त जज्ज साहिब ने बाबू सुरेन्द्रनाथ के ऊपर इज्जतहतक का मुकदमा चलाया । इसमें बाबू सुरेन्द्रनाथ की तरफ से श्रीयुत डबल्यू० सी० बनर्जी आदि कई देशभक्त महोदयों ने बड़े जोर शोर से पैरवी की । परन्तु कुछ सफलता प्राप्त न हुई बाबू सुरेन्द्रनाथ अपराधी समझे गये और उनको दो महीने की सजाका हुक्म होगया । बाबू सुरेन्द्रनाथ इस दण्ड को सुनकर बिलकुल नहीं घबड़ाये । क्यों नहो जिन्होंने देशहित के लिये कमर कसली है वो विघ्नबाधाओं से कभी नहीं डरा करते । जिस समय बाबूसुरेन्द्रना

थ महोदय को कारागृह (जेलखाने) भेजागया उस समय शतशः मनुष्य अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए आपके पीछे२ जेलखाने तकगये । बाबू सुरेन्द्रनाथ के साथ बिलकुल अन्याय हुआ है उन्हें छोड़ना चाहिये । ऐसे मजमून के सैंकड़ों तार लार्डरिपन के पास पहुंचे इस लिये लार्डरिपन ने खेद प्रकाशित किया । ४ जुलाई सन् १८८३ को बाबू सुरेन्द्रनाथ का छूटने का दिन था जेल अधिकारियों को दृढ विश्वासथा कि लोग यहीं आकर आनंद प्रकाश करेंगे और सुरेन्द्रको सवारी पर चढ़ाकर बड़े समारोह के साथ धूम धाम करते हुए लेजायगे । इस कारण इन लोगोंने अपनी गांठसे गाड़ी किरायेकर चार घडी रातरहे ही बाबू सुरेन्द्रनाथ को उनके घर पंहुचा दिया । परंतु इससे क्या बंगवासियों की खुशी रुकगई ? नहीं उनके छूटने पर समस्त बंगाल में नाना प्रकार से खुशी मनाईगई। कलकत्ता के टाउन हाल में एकही दिन में तीन भारी भारी सभाएं हुई जिनमें प्रायः बीस बीस सहस्र मनुष्य एकत्रितथे। इस समय से आपकी विमल कीर्ति और भी अधिक फैलगई लोग आप में बड़ी भक्ति करने लगे। कुछ दिनों बाद आपने " इंडियन एसोसियेशन " नाम्नी सभाकी स्थापना की । जिसदिन इस सभाकी पहली बैठकहुई दैवात् उसी दिन आपका इकलौता पुत्र स्वर्ग को पधार गया तथापि आपने इसकी अधिक चिन्ता न की आप सभामें आए और बड़ी उत्तमता के साथ सभा के उद्देश्यों का वर्णन किया । देखा पाठक ! इसे कहते हैं स्वदेश प्रेम भला किस मनुष्य की सामर्थ्य है कि पुत्रशोक जैसी आपत्ति पड़ने पर इस धैर्य के साथ सभामें जाकर व्याख्यान देना जैसे कठिन कार्य का निर्वाह कर सके ?

सब प्रकार के मनुष्यों को एकत्रित कर उनमें राजनैतिक विचारों के उत्पन्न करने का प्रयत्न आप सर्वदा करते रहते हैं। आपने विलायत जाकर भी भारत की सच्ची दशा का ज्ञान कराने के निमित्त अङ्गरेज समाजों में बड़े बड़े प्रभाव शाली व्याख्यान दिये हैं। जिन्हें सुनकर अंगरेजों के समागई कि भारतवासी विद्या वुद्धि में हम लागों से किसी प्रकार भी कम नहीं दिखाई पड़ते। कांग्रेस का कार्य भी आप बड़े उत्साह और परिश्रम के साथ करते रहे हैं। इस लिये आप दो बार कांग्रेस के सभापति भी बनाये गये हैं। प्रथम सन् १८९५ में और द्वितीय बार सन् १९०२ में। पूना के विद्यार्थियोंने आप को मान पत्र दिया था उस समय आप ने कहा कि ,, राजनैतिक कार्य मुझसे जैसे कुछ भी हुए हों, परन्तु शिक्षकके नाते से में जो कामकर रहा हूं वह अवश्य ही चिरस्थायी है। युवकों के चित्तोंपर शिक्षा का असर डालने का जो काम मुझे सोंपागया है उसके लिये में बड़ा प्रसन्न हूं इसके सिवाय आप ने ये भी कहा है कि" हमारी राय में विद्यार्थियों को राजनैतिक चर्चा में अवश्य सम्मिलित होना चाहिये। विद्यार्थियों को इतिहास भी मनन करना अवश्य लाभकारीहै। इंग्लेण्ड वासी छात्रों को राजनैतिक चर्चा करने का पूरा २ अधिकारहै। वे समय २ पर राजनैतिक चर्चा किया करते हैं। यह सबको अच्छी प्रकार विदित है कि सुरेन्द्रनाथबनर्जी पर पाश्चात्य शिक्षा का पूरा असर है परन्तु बाबू सुरेन्द्रनाथ ने अपने धर्म, और नीति को कभी परित्याग नहीं किया। पूना में छात्रों को उपदेश देते हुए आपने मुक्त कण्ठ से कहा था कि, किसी काम को प्रारम्भ करो उसकी नीम अपने धर्म और

नीति के अनुसार ढालो उसी में कल्याण होगा" यथार्थ में बाबू सुरेन्द्रनाथ का मत बहुत ठीक है हमारे पुराने ऋषियों ने भी यही कहा है [सर्वं धर्मे प्रतिष्ठितम्] भारत सरकार की शासन प्रणाली में जो कुछ दोष हैं उसके सुधार के लियेआप बराबर चेष्टा करते रहते हैं। वंगबासियों को शिवाजी उत्सव करने के लिये आपने ही उत्साहित किया। ये उत्सव प्रति वर्ष कलकत्ते में हुआ करता है। आप इस उत्सव पर खूब व्याख्यान देते हैं लोगों को अच्छी तरह समझा देते हैं कि अपने प्राचीन वीरों के उत्सव और कीर्तन से क्या २ लाभहैं। यथार्थ में बाबू सुरेन्द्रनाथजी के शरीर से देश का बहुत कुछ उपकार होता है। आप बायकाट के पूर्ण पक्षपाती हैं। परंतु न मालुम इस वर्ष आप किस चक्रचाल में फसकर मंद्रास की एकदली कांग्रेस में सम्मिलित हुए! इस विषय में हम कुछ अधिक लिखना उचित नहीं समझते क्योंकि बड़ों की बड़ी बातें हैं ॥

श्रीहरिः

॥ पण्डित अयोध्यानाथ ॥

अधिगत परमार्थो न्पण्डिता न्भावसंस्था- ।
स्तृणमिव लघुलक्ष्मी नैव तान्संरुणाद्धि ॥
मदमिलित मिलिन्द श्याम गण्डस्थलानां ।
भवति विसतन्तु वारणं वारणानाम् ॥

यों तो इस जन्ममरणशील संसार में अनेक पुरुष जन्म लेते और मरते रहते हैं । परन्तु यथार्थ में उसीका जन्म लेना सार्थक है कि जिसके शरीरसे देशका उपकार हो सके । अवश्य ही जगत् का उपकार करने के लिये बड़े बड़े योगभ्रष्ट महात्मा जन्म लेकर मनुष्य जाति के महत्वकी रक्षा करते रहेहैं । भारत वर्ष में ऐसे महात्माओं का अभाव रहा हो सो नहीं किन्तु कमी अवश्यहै । प्रिय पाठक ! आजहम जिस प्रतिभाशाली पुरुष पुङ्गव की कीर्त्ति लिखने को बैठे हैं उनका नाम पण्डित अयोध्यानाथहै । ये वोही प्रतापी मनुष्य है कि, जिसकी विद्वत्ता, धारणा, वक्तृता, और निर्भयता की प्रशंसा देशी विदेशीसभी प्रकार के विद्वान् एक स्वरसे कर रहेहै । इसमें संदेह नहीं कि ऐसे २ नर रत्नों को खोकर भारतमाता कुछ समय के लिये श्रीहीना अवश्य होजाती है ॥

शोक तो इस बातका है कि ऐसे महात्माओं के अनन्तर उनके शून्य आसन पर बैठने वाला भी सहसा उत्पन्न नहीं होता देखिये ! महात्मा पं०अयोध्यानाथजी को स्वर्गवास किये हुए आज १७ वर्ष व्यतीत होचुके परंतु किसी वकील महाशयने पण्डितजी के मार्ग का अनुसरण नहीं किया । यों मन--

मांनी कांग्रेस का सुसभ्य बनजाना, झूटे सच्चे मुकदमा लडकर जज्ज बनने की इच्छा रखना, चार यार दोस्तों की की हुई प्रशंसा को सुनकर फूले अंग न समाना दूसरी बात है परन्तु क्या कोई प्रयागस्थ वकील पण्डित अयोध्यानाथजी के शून्यासन पर बैठने का साहस करसक्ता है ॥

पण्डित अयोध्यानाथ कश्मीरी ब्राह्मण थे आपका जन्म ८ अप्रेल सन्‌ १८४० ईसवीको आगरा शहर में हुआथा। इनके पिता पण्डित केदारनाथ बडे विद्वान, और प्रतिष्ठित पुरुषथे। पहले आप नवाब जाफर के मन्त्रीथे परन्तु कई अनिवार्य कारणों से उन्होंने उक्त नौकरी को परित्याग कर आगरे में स्वतन्त्र बेङ्क स्थापित किया तब से आप बराबर यहीं रहते थे। हमारे चरित्रनायक बालपनसे ही सुलक्षण सम्पन्न और विद्यानुरागी थे। आपको प्रथम फारसी और अरबी की शिक्षा दिलाई गईथी आप उक्त दोनों भाषाओं में थोडेही से समय में ऐसे प्रवीण होगये कि बडे बडे मोलवी इनकी दलीलों से चक्कर खातेथे। अंग्रेजी के अभ्यास कालमें भी आप बराबर बडे२ इनाम पाते रहे।

एफ. ए. पास करने के बाद सन्‌ १८६२ में आपने विकालत का सार्टी फिकिट प्राप्तकिया। उस समय संयुक्त प्रान्त की हाईकोर्ट आगरा में थी। इस कारण आप वहीं विकालत करने लगे। थोडे ही से समय में आप तेज और प्रतिष्ठित वकील प्रसिद्ध होगये। "विक्टोरिया कालेज" की संस्थापनाही पंडितजी की देश सेवाका प्रथम कार्य था। सन्‌ १८६८ में हाईकोर्ट आगरा से उठकर इलाहाबाद गई तभी पण्डितजी भी इलाहाबाद आकर विकालत करने लगे स्वल्पकाल में ही

यहां भी आपकी कीर्ति विशेष रूप से फैलगई, आप एक अग्रगण्य वकील कहे जाने लगे। पण्डितजी केवल विकालत ही नहीं करते थे किन्तु इलाहाबाद के गवर्मेन्ट कालिज में कानून के अध्यापक भी थे इस पदपर काम करने का ये ही एकमात्र कारण था कि उस समय आप जैसे कानून का ज्ञाता दूसरा नहीं था। हाईकोर्ट के बडे से बडे हाकिम पण्डितजीकी विद्वत्ता तर्क शक्ति, और धारणा की मुक्त कण्ठ से बारबार प्रशंसा किया करते थे पण्डित जी फारसी, अरबी, अंग्रेजी के भारी विद्वान् होनेपर भी आजकल के अन्यान्य अंग्रेजी पठित जन्टिलमेनों के समान आचरण करनेवाले नहीं थे। वह अपने सनातन धर्मपर पूरी प्रीति करते थे बिना पूजन पाठ किये कुछ काम नहीं करते थे ! एक दिन एक नये कलेक्टरबहादुर इलाहाबाद शहर की देखभाल करते २ पण्डितजी के मकान के पास आ निकले यहां पर कुछ कूडा पडाथा इसे देख कलेक्टर साहिब ने पूंछा यह किस का मकान है पड़ौस के आदमियों ने आप का नाम बता दिया। साहब को यह न मालूम था कि यह एक असाधरण तेजस्वी निर्भीक पुरुष का मकान है। साहिब ने पण्डितजी को बुलवाया। नौकरों ने प्रार्थना की पण्डितजी इस समय पूजन कर रहे हैं हम लोगों को हुक्म है कि कैसा ही काम क्यों न हो पूजन के समय हमारे पास कोई न आवे। इस कारण आप कुछ काल ठहरिये तो पण्डितजी आसक्के हैं। साहब थोडी देर तक घोडेपर डटे खडे रहे जब उतनी देरमें भी पण्डितजी न आये तब तो साहब बेहद संकुपितहुए और तत्काल हुक्म दिया कि पण्डित जिस हाल में हों बुला लाओ। पण्डितजी उस समय पूजन से निवृत्त हो चुकेथे

इस कारण बाहर आये। और कलक्टर साहब से पूछा कि "कहो क्या चाहते हो? इस प्रकार निडर होकर बात करना मानों साहब के ऊपर अग्निपुञ्ज बरसाना था। साहब ने झुंझलाकर कहा तुम्हारे मकान के सामने यह कूडा क्यों पड़ा है?। पण्डितजी ने कुछ उत्तर न देकर अपने नौकर से एक डलिया मंगवाई और कहा कि यह डलिया साहब को देदो कि वह कूडा उठाकर फेंके क्योंकि आप म्यूनिसपेल्टी के चेयरमैनहैं। यह बोली साहब के बाण के समान लगी पर साहब ने वहां पर अधिक बोलना अनुचित समझ अपनी रास्ता ली। स्थान पर आकर उक्त व्यवस्था एक दो अफसरों से कही। अफसरों ने उत्तर दिया यदि ऐसा है तो आपने अच्छा नहीं किया। याद रक्खो वह तुम्हारे ऊपर इस प्रकार व्यर्थ अपना समय नष्ट कर देने की नालिश ठोक दे तो कोई आश्चर्य नहीं। कोर्ट की ये सामर्थ्य नहीं कि पण्डित अयोध्यानाथ की सुनी अनसुनी करदे तुमारे ऊपर डिग्री अवश्य होगी। अबतो साहब की आंख खुलगई और समझ गये कि भारतीय मनुष्योंमें भी बडेर प्रतिभाशाली पुरुषपुङ्गव मौजूदहैं। सचमुच पण्डितजी ने भी साहब के ऊपर नालिश ठोकही दी कि कलेक्टर ने हमारी १५ मिनट व्यर्थ खोदी अतः बुलाकर कार्य कराने की जो मेरी फीस तीनसौ रुपये हैं वो उनको देने चाहिये। नालिश होते ही साहब बहादुर बहुत घबडाये। अन्त में बुद्धिमान् अङ्गरेजों ने सलाह दी कि आप माफी मांग लीजिये। यद्यपि साहब माफी मांगना बडी बेइज्जती का काम समझते थे तथापि जुर्माना देने से उसे कहीं अच्छा समझकर माफी मांगकर ही अपना पीछा छुड़ाया॥

पण्डितजी स्वाधीनता के बडे पक्षपाती थे सन् १८८१ ई० में हाईकोर्ट के चीफजस्टिस सर रवर्ट ष्टुवर्ट साहब ने पण्डित अयोध्यानाथ को जज्ज बनाने के लिये गवर्भेन्ट को लिखाथा पर पण्डितजी ने साफ उत्तर दिया कि " में तो स्वाधीनता बहुत चाहता हूं "

देखा पाठक अब आजकल के वड़े २ नाम धारी वकील जजी के लिये स्वयं मुख फैलाये बैठेहैं। सन् १८७९ ईस्वी में आपने " इण्डियन हेरल्ड नामक एक इंगरेजी दैनिक पत्र निकालना आरम्भ किया (यह पत्र ठीक पाइनर की तरह का था) इसको निकाल कर पण्डितजी ने देशका बहुत कुछ उपकार किया। इसके प्रवन्ध में पण्डितजी का एक लक्ष रुपया खर्च हुआथा। देशवासियों ने इसपत्र को जैसी चाहिये वैसी सहायता नहीं दी अतः सन् १८८२ में यह बन्द होगया। अनन्तर सन् १८९० में फिर आपने " इण्डियन यूनियन " नामकपत्र निकाला। पण्डित अयोध्यानाथजी कलकत्ता तथा इलाहावाद इन दोनों यूनीवार्सिटियों के फैलो थे। पण्डितजी का देशभक्ति की ओर ध्यान जातेही जगत्प्रसिद्ध देशभक्त मैजिनी की याद आए बिना नहीं रहती। आपको अपने देशसें सच्चा प्रेमथा। कांग्रेसमें प्रवेश करतेही पण्डितजी ने तन मन धन से कांग्रेस की उन्नति की। इसमें कुछ संदेह नहीं कि पण्डितजी के परिश्रम से ही उक्त सभाकी दशा सम्हली। पण्डितजी के सम्मिलितहोने से ही इस सभाको "राष्ट्रीयसभा" कहाने का सौभाग्य प्राप्तहुआ। पण्डित अयोध्यानाथजी के न होने के कारण ही स्वदेशी आन्दोलन का जिक्रिर आते ही युक्त प्रदेश वासियों को अन्य प्रान्त वालों के सामने सिर झुकाकर चुप होजाना

पडता है । हाय ! हाय ! क्या उस पुरुष पुङ्गव के होते हुएभी हमारे प्रान्तको ये लांछना भोगनी पडती ? विश्वास कहताहै कदापि नहीं, कदापि नहीं । सन् १८८८ में राष्ट्रीय सभा का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ उस समय अधिकारि वर्ग ने बडी बडी विघ्न बाधा उपस्थित कीं परन्तु पण्डितजी ने बडी निर्भयता पूर्वक अपने दीर्घोद्योग और अतुल परिश्रम से सभाका कार्य इस उत्तमता के साथ कर दिखाया कि विपक्षवाले आश्चर्य में गोता खाने लगे । प्रथम दिन कार्यारम्भ में स्वागत कमेटी के सभापति होनेपर पण्डितजीने जो प्रभावशाली वक्तृता दीथी उसे सुनकर लोग मुग्ध होगये पण्डितजी उनलोगों की कक्षा में नहीं थे जो सभामण्डप में दो एक दिन लम्वी चौडी मिठवोली स्पीच देकरही सालभर खर्राटे खेंचतेहैं वे सालभर तक वरावर सभा का काम करते थे देश में नगर नगरों में घूमकर चन्दा एकचित्र करते और सभा का उद्देश्य समझाते थे ।

एक समय पण्डित जी चन्दालेने के लिये आगरेगये । किसी देशशत्रु ने हंसी उडाने के लिये एक लडके को एक पैसादेकर सिखाया कि जा सभा में जाकर पण्डित अयोध्यानाथ की मेजपर यह एक पैसा रखदे लडके ने ऐसाही किया । पण्डित जी रसभाव को समझ गये पैसा रखतेही उन्होंने एक उत्तम व्याख्यान देना आरम्भ किया उस में कहा कि जब " देशके आशास्थल बालकों को भी देशके दुख दूर करने का इतना ध्यानहै तो फिर देशके कल्याण होने में सन्देह ही क्या है ? इस व्याख्यान का यह फल हुआ कि आशा से कहीं अधिक चन्दा एकत्रित हुआ । सुना जाता है कि प्रयाग में कांग्रेस के

लिये उचित जगह न मिलने पर पण्डित जी ने अपने मकान को खोदकर मण्डप बनाने के लिये अनुरोध किया था। धन्य अयोध्यानाथ क्या आपसरीखा देशहितैषी इस प्रान्त में फिर कभी जन्म लेगा। पण्डित जी का भाषण ऐसा हृदयग्राही होता था कि वो लोगों के चित्तको चुम्बक की भांति आकर्षित कर लेतेथे बोलते समय अंग विक्षेप करने की मात्रा उन में बहुत चढ़ी बढ़ी थी।

"राष्ट्रीय सभा" के जनरल सैक्रेटरी मिस्टर ए. ओ. ह्यूम के विलायत जानेपर राष्ट्रीय सभा के ज्वाइंट जनरल सैक्रेटरी के पदपर पंडितजी नियत हुए इस देशोपकारी काम को पंडितजी ने किस योग्यता के साथ किया इस बात को कांग्रेस से सम्बन्ध रखने वाले लोग अच्छी तरह जानते होंगे।

जब पंडित जी की अलौकिक देशसेवा से लोग मुग्ध होगये तो आपको नागपुर में होने वाली सभा का सभापति बनाने का विषय छिड़ा। उस समय प्रबन्ध कारिणी सभा ने प्रस्ताव पेश किया कि अबतक मदरास प्रान्तवासी उस मान से वंचित हैं अबकी बार किसी मदरासी सज्जन को सभापति बनाया जाय फिर संयुक्त प्रान्त के किसी सज्जन को ये मान प्राप्त होतो अच्छा है। इस प्रस्ताव के सुनतेही झट से पंडित अयोध्यानाथ जी ने ही उक्त प्रस्ताव का समर्थन कर दिया इसलिये श्रीमान् आनन्दचार्लू नागपुर सभा के सभापति बनाये गये। चार्लूमहोदय ने जो सभा में वक्तृतादी उसमें मुक्त कण्ठ से कहा था कि मुझे यह सौभाग्य आज पंडितजी की कृपासे प्राप्त हुआ है। मैं उनके सामने कुछ भी नहीं हूं उनका देश प्रेम वर्णनातीत है इत्यादि।

नागपुर की सभा का काम समाप्त होनेपर पंडितजी इलाहाबाद वापिस आए। मार्ग में ही उनको ज्वर हो आया स्थानपर आकर अनेक चिकित्सा की परन्तु सब निष्फल गईं अंत में ११ जनवरी सन् १८९२ को इस असार संसार को परित्याग कर स्वर्ग वासी हुए। लोगों की समस्त आशाऐं धूल में मिलगईं सब तरफ से हाय अयोध्यानाथ की कठोर आवाजें सुनाई पड़नेलगीं देखते देखते भारत का सच्चा नररत्न भारत को अरत्नकर चिरकाल को नष्टहोगया पंडितजी का शोक भारतीय सज्जनों को ही हुआ हो सो नहीं किन्तु विदेशी हाईकोर्ट के जज्ज श्रीमान् जॉस्टिसनाक्सने पंडितजी की शवपर डालने के लिये एक सुन्दर पुष्पहार भेजकर शोक प्रकाशित किया था। हे अयोध्यानाथ क्या! पंडित अयोध्यानाथ को फिर किसी रूप में यहां नहीं भेजसक्ते?

श्रीहरिः

॥ कर्मवीर ॥

(सरस्वती अप्रैल सन् ७ से उद्धृत)

देख कर जो विघ्न बाधाओं को घबराते नहीं ।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
काम कितनाही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।
भीड़ पड़ने पर भी चंचलता जो दिखलाते नहीं ॥
होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में रहते यह फूले फले ॥ १ ॥
आज जो करना है कर देते हैं उस को आजही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही ॥
भूल कर वह दूसरे का मुंह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है जिस को वह कर सकते नहीं ॥२॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गंवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये ।
वह नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥ ३ ॥
गगन को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।
वह घने जंगल जहां रहता है तम आठों पहर ॥
गर्जते जल राशि को उठती हुई ऊंची लहर ।

आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥
है कंपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं ।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है वहीं ॥ ४ ॥
चिल चिलाती धूप को जो चांदनी देवें बना ।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
हंसते हंसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना ।
है कठिन कुछ भी नहीं जिन के है जी में यह ठना ॥
कोस कितने ही चलें पर वह कभी थकते नहीं ।
कौन सी है गांठ जिस को खोल वह सकते नहीं ॥ ५ ॥
ठीकरों को वह बना देते हैं सोने की डली ।
रंग को करके दिखा देते हैं वह सुन्दर खली ॥
वह बबूलों में लगा देते हैं चम्पे की कली ।
काक को भी वह सिखा देते हैं कोकिल काकली ॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वह कमल ।
वह लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल ॥ ६ ॥
काम को आरम्भ करके यों नहीं जो छोड़ते ।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुंह मोड़ते ॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते ।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन ।
कांच को करके दिखा देते हैं वह उज्वल रतन॥७॥
पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वह ।
सैकड़ों मरु भूमि में नदियां बहा देते हैं वह ॥
अगम जलनिधि गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वह ।

जंगलों में भी महा मंगल मचा देते हैं वह ॥
भेद नभतल का उन्होंने है बहुत बतला दिया ।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया ॥ ८ ॥
कार्य्य थल को वह कभी नहीं पूछते वह है कहां ।
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहां ॥
उलझने आ कर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहां ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहां ॥
डाल देते हैं विरोधी सैंकड़ोंही अड़ चलें ।
वह जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥ ९ ॥
जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्वत खड़ा ।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वह उड़ा ॥
बीच में पड़ कर जलधि जो काम देवे गड़ बड़ा ।
तो बना देगें उसे वह क्षुद्र पानी का घड़ा ॥
बन खगा लेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी ।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी १० ॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले ।
बुद्धि विद्या धन विभव के हैं जहां डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले ।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जन्म लेंगे कभी ।
देश की वा जाति की होगी भलाई भी तभी ॥ ११ ॥

❀ समाप्तेयं भारतनररत्नचरितावली ❀

॥ श्रीतिलकार्पण मस्तु ॥

॥ इति ॥